बी० ए० (प्रतिष्ठा) खण्ड-III

हिन्दी-(प्रतिष्ठा)

पत्र-पंचम

विषय सूची

क्रम सं०-	पाठ का नाम	इकाई सं०	पृष्ठ सं०
1.	'त्यागपत्र' की कथावस्तु एवं उपन्यास का प्रतिपाद्य	1 -	1
2.	उपन्यासकला की दृष्टि से त्यागपत्र का विवेचन	2 -	20
3.	प्रमुख भागों का चरित्र-चित्रण	3 -	41
4.	उपन्यास के महत्वपूर्ण व्याख्या के अंश और उनकी व्याख्या लघु-उत्तरीय प्रश्न एवं वस्तुनिष्ठ प्रश्न	4 -	53
5.	भारत की श्रेष्ठ कहानियाँ	5 -	61
6.	माँ (कन्नड़ कहानी: डॉ यू आर अनंतमूर्ति	6 -	71
7.	संस्कार (तेलुगु कहानी)	7 -	78
8.	रजाई (पंजाबी कहानी)	8 -	86
9.	ऐसा और वैसा (मराठी कहानी)	9 -	90
10.	उसने कहा था	10 -	95
11.	डाक्टरनी का कमरा (तमिल-कहानी)	11 -	100
12.	फाँसी (मलयालम)	12 -	105
13.	झर गये फुलवा, रह गई बास (गुजराती)-	13 -	110
14.	यह भी कोई कहानी है (सिंधी)	14 -	114

'त्यागपत्र'

'त्यागपत्र' की कथावस्तु एवं उपन्यास का प्रतिपाद्य

1.1 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ का उद्देश्य है छात्रों को उपान्यासकार जैनैंद्र कुमार रचित प्रसिद्ध उपन्यास त्यागपत्र' की कथावस्तु एवं प्रतिपाद्य से परिचित कराना। प्रस्तुत पाठ में हिंदी उपन्यास विधा का संक्षिप्त इतिहास देते हुए जैनेंद्र कुमार के उवदान पर भी प्रकाश डाला जाएगा।

1.2. प्रस्तावना

जैनेंद्र कुमार हिंदी कथा साहित्य के श्रेष्ठ रचनाकार हैं। इन्होंने हिन्दी कथा-साहित्य को नई दिशा दी। जैनेंद्र कुमार के कथा-साहित्य पर कुछ लिखने के पूर्व यह अनिवार्य हो जाता है कि हम उनके पहले के कथाकारों और बाद के कथाकारों की विशद समीक्षात्मक टिप्पणी प्रस्तुत करें।

हिंदी कथा-साहित्य के इतिहास की रूपरेखा प्रस्तुत करने के लिए प्रमचंद को अनिवार्यत: केंद्रीय सत्ता प्राप्त होती है। तब हम हिंदी कथा-साहित्य के विकास को तीन युगों में विभक्त कर प्रस्तुत कर सकते हैं।

पूर्व प्रेमचंद युग

प्रेमचंद युग

प्रेमचंदोत्तर युग हिंदी

शिल्प के आधार पर यदि कथा-साहित्य के विकास को देखा जाए तो यह तीन महत्वपूर्ण रूपों में विवेचित हो सकता है। यथा-

घटना-प्रधान- कथा-साहित्य

यथार्थवादी कथा-साहित्य

मनोवैज्ञानिक एवं मनोविशलेषणात्मक कथा-साहित्य

यथार्थवादी कथा-साहित्य के अंतर्गत ही आंचलिक कथा-साहित्य को लिया जा सकता है।

हिंदी साहित्य में उपन्यास का वास्तविक स्वरूप पहले पहल प्रेमचंद के उपन्यासों में ही दिखाई पड़ता है। या हिंदी उपन्यासों का वास्तविक विकास प्रेमचंद से ही मानना चाहिए। जब कुछ लोगों द्वारा यह बात कहीं जाती है तो उसके पीछे यही सत्य निहित होता है कि हिंदी में उपन्यास की वास्तविक शक्ति और स्वरूप को

सही रूप में पहले-पहल प्रेमचंद ने ही पहचाना । प्रेमचंद के पूर्व के हिंदी उपन्यासों में विषय और उद्देश्य की दृष्टि से कुछ वैचित्त्य भले रहा हो, लेकिन वे कहीं-न-कहीं एक हैं और वे सबके सब उपन्यास की वास्तविक गरिमा प्रदान करने में असमर्थ हैं । प्रेमचंद के आगमन तक इसी प्रकार के उपन्यासों का स्वरूप हिंदी में दिखाई पड़ता है । प्रेमचंद ने उपन्यास साहित्य को एक नई दिशा दी । दिशा ही नहीं दी उसे उत्कर्ष पर पहुँचा दिया । (डॉ० रामदरश मिश्र, हिंदी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा पृ० २०)

पूव-प्रेमचंद युग में उपन्यास-साहित्य की दो प्रवृत्तियाँ स्पष्ट होती हैं (1) केवल मनोरंजन और (2) मनोरंजन के साथ सुधारवादी भावना । इस युग के उपन्यासों की प्रमुख और सामान्य विशेषता है उनका घटना प्रधान होना । इस युग के उपन्यास घटना प्रधान होने के साथ उपदेशात्मक भी होते थे । घटना प्रधानता और उपदेशात्मकता के चलते इस युग के उपन्यास रचनात्मक स्तर पर नितांत शिथिल होते थे । विवरण-वर्णन के विस्तृत प्रदेश में रचनात्मकता कहीं-कहीं अपने-आप उग आए फूल के पौधों के रूप में दृष्टिगोचर होती है । पर रचनात्मक पूर्णता की दृष्टि से इस युग के उन्यास निराशा ही प्रस्तुत करते हैं । मनोरंजन और उपदेश की प्रवृत्ति के कारण जीवन के वास्तविक प्रसंग अपने ठोस रूप में अभिव्यक्त नहीं होते । जीवन-यथार्थ की चिंता उन उपन्यासों में कम दिखाई पड़ती है । सुधारवादी दृष्टि से इन उपन्यासों में जीवन के कई प्रसंग अवश्य उभरे हैं, पर उन्हें गहराई से विवेचित और संप्रेषित करने की कोई प्रबल इच्छा उपन्यासकारों में नहीं दिखाई पड़ती । डॉ० रामपरश मिश्र कहते हैं इस युग के उपन्यासों में पात्रों की योजना चारित्रिक विशेषताओं, मानसिक सत्यों की निगूढ़ताओं, सामाजिक परिवेश के साथ उनके विभिन्न संबंधों के चित्रण के लिए नहीं होती, घटनाएँ भी गहन जीवन संदर्भों और पात्रों की पारस्परिक क्रिया-प्रतिक्रियायों से प्रभावित नहीं होतीं, वे जीवन के विभिन्न प्रश्नों, समस्याओं ओर आकांक्षाओं की जटिलताओं से उभरी नहीं होतीं सनसनी पैदा करनेवाली कौतूहलवर्द्धन करनेवाली या किसी विशेष सुधारवादी अंत तक पाठक को पहुँचाने वाली घटनाओं को लेखक अपने ढंग से सजाता चलता है । स्पष्ट है कि इस प्रकार के घटना नियोजन में कथानक का स्वाभाविक प्रवाह तथा पात्रों का सहज विकास सुरक्षित नहीं रह पाता है । (उपन्यास: एक अंतर्यात्रा पृ० २२)

पूर्व-प्रेमचंद युग में जासूसी तिलस्मी और ऐयारी उपन्यासों की सृष्टि हुई । इन उपन्यासों में कृतिकार की सारी दृष्टि मनोरंजन पर टिकी होती थी । देवकीनंदन खत्री, किशोरीलाल गोस्वामी, देवीप्रसाद शर्मा, जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी आदि ने तलस्मी-ऐयारी उपन्यास लिखे । ऐसे उपन्यास शुद्ध मनोरंजन-प्रधान होते थे । गोपालराम आदि ने जासूसी उपन्यास तथा श्रीनिवासदास, बालकृष्ण भट्ट, राधाकृष्ण, राधाचरण गास्वामी देवीप्रसाद शर्मा, किशोरीलाल 'गोस्वामी' लज्जाराम मेहता आदि ने सामाजिक तथा उपदेशप्रधान उपन्यास लिखे । इस युग में अनेक ऐतिहासिक उपन्यास भी लिखे गए । ऐतिहासिक उपन्यासकारों में मुख्य रूप से किशोरीलाल गोस्वामी, बलदेवप्रसाद मिश्र, कृष्णप्रकाश सिंह, अखौरी ब्रजनंदन सहाय, मिश्रबंधु आदि के नाम उल्लेखनीय हैं ।

हिंदी का पहला उपन्यास कौन ?

यह प्रश्न उठता है कि हिंदी खड़ी बोली हिंदी का पहला उपन्यास कौन है ? एक कहानी कुछ आपबीती कुछ जग बीती (भारतंदु हरिश्चंद्र), 'देवरानी-जेठानी ही कहानी' (1970) 'वामा शिक्षा' (1882), 'भाग्यवती' (1857), 'रानी केतकी की कहानी' (इशा अल्लाखाँ), 'नासिकेतोपाख्यान (सदलमिश्र) प्रेमसागर (लल्लूलाल)

तथा परीक्षागुरू' (श्रीनिवासदास) आदि उपन्यासों को आलोचकों ने अपने-अपने मत में हिंदी का प्रथम उपन्यास सिद्ध किया है । पर, हिंदी के सुविख्यात आलोचक और इतिहासकार समचंद्र शुक्ल ने श्री निवासदास शकृत 'परीक्षागुरु' (1882) को ही हिंदी का प्रबंध उपन्यास प्रमाणित किया है । इसी उपन्यास में सर्वप्रथम औपचारिक तत्वों का समन्वयात्मक विधान हुआ है । इस उपन्यास के संबंध में डॉ० बच्चन सिंह हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास में कहते है'' अपनी अनेक त्रुटियों के बावजूद यह हिंदी के यथार्थवादी उपन्यासों की नींव का पत्थर है । इस उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि हृदयमें नवजागरण की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है । अपनी भाषा की उन्नति के साथ इसमें नए ढंग की खेती और कलकारखाने की उन्नति पर बल दिया गया है । अँग्रेजों की नक्ल को निषिद्ध ठहराया गया है । देशी भाषा में शिक्षा देने पर जो दिया गया है । अखबारों की कद्र न करने की निंदा की गई है । पुरानी पीढ़ी की कर्मठता को अनुकरणीक बताया गया है । इस तरह उस युग को समग्रता में समेटने का जो प्रयास लालाजी ने किया वह प्रशंसनीय है । प्रेमचंद के आदर्शोन्मुख यथार्थ की गंगा की गोमुवी है । दौर (पृ० २२२)

देवकीनंदन खत्री की 'चंदकांता' (191) और चंद्रकांता संतति' इस युग की सर्वाधिक लोकप्रिय औपन्यासिक कृतियाँ हैं । ऐसा कहा जाता है कि उसके प्रकाशित हाने पर तिलस्मी उपन्यासों की धूम मच गई । इन उपन्यासों के पढ़ने के लिए तब बहुत-से लोगों ने हिंदी सीखी । इसी से इन कृतियों की लोकप्रियता का अनुमान लगाया जा सकता है । विजयगढ़ की राजकुमारी चन्द्रकान्ता को ही वीरेंद्र सिंह और क्रूरसिंह दोनों चाहते हैं । चंद्रकांता वीरेंद्र सिंह को चाहती है । प्रेम का संघर्ष ही अनेक प्रकार की वैचित्यपूर्ण घटनाओं की सृष्टि करता है । यह प्रेमकथा है परंतु, प्रेम की मार्मिक अनुभूतियों का चित्रण जादुई घटनाओं के सघन प्रवाह के नीचे लुप्त-सा हो गया है । (डॉ० रामपरश मिश्र, हि० उ० एक अन्तर्यात्रा पृ० 25)

इस उपन्यास के संबंध में डॉ. बच्चन सिंह कहते हैं कि 'चंद्रकांता' की कहानी अपने आप में महत्त्वपूर्ण नहीं है, महत्वपूर्ण है उपन्यास की । **प्रसिद्ध कथाकार** राजेन्द्र यादव इस उपन्यास की सार्थकता इसकी प्रतीकात्मक राष्ट्रीयता में खोजते हैं, पर डॉ. बच्चन सिंह के अनुसार मेरे विचार में यह मध्यकालीन सामंती परिवेश का ध्वंस विशेष है जिसमें झूठी लड़ाइयाँ लड़ी जाती हैं झूठे वैभव ओर कृत्रिम शौर्य का प्रदर्शन होता है । अँग्रेजी राज्य की पूर्ण स्थापना के बाद विगत की प्रभावहीन जुगाली की जा सकती है, अपनी ड़ार को तिलस्म की भूल-भुलैया में भुलाया जा सकता है । (हि० सा० का दूसरा इतिहास पृ० 25)

1.2.2. विस्तार इस काल के उपदेशप्रधान सामाजिक उपन्यासों में प्रमुख हैं परीक्षागुरू (श्री निवासदास) 'नूतन ब्रह्मचारी, सौअजान एक सुजान (बालकृष्णभट्ट), 'निस्सहाय हिंदू (राधाकृष्णदास), 'विधवा विपत्ति' (राधाचरण गोस्वामी और देवी प्रसाद शर्मा), कुसुम कुमारी' 'लवंग लता' (किशोरीलाल गोस्वामी', सास-पातोहू', 'बड़ा भाई', 'नए बाबू' गोपालराम गहमरी), 'परतंत्र लक्ष्मी' (लज्जाराम मेहता) आदि ।

गोपालराम गहमरी (1866-1946) ने देवकी नंदन खत्री ही देखा-देखी तिलस्मी उपन्यासों के ढर्रे पर जासूसी उपन्यास लिखे । किशोरी लाल गोस्वामी (1865-1932) ने तो उपन्यासों का अंबार लगा दिया । उन्होंने छोटे-बड़े कई उपन्यासों का लेखन किया ।

इस युग के उपन्यासों के संबंध में कहा जा सकता है क़ि रूपात्मक दृष्टि से ये निर्माण की अवस्था से गुजर

रहे थे । प्रेमचंद ने इस युग के उपन्यासों के बुरे प्रभाव से अपने को मुक्त किया । समभवतः वे इस लिए सफल उपन्यासकार हो सके ।

इस युग में बंगला, मराठी, उर्दू, अँगरेजी और संस्कृत की कथाओं के अनुवाद प्रस्तुत किये गए । उस युग तक वंग भाषा में बहुत-से अच्छे-अच्छे.उपन्यास निकल चुके थे । अतः साहित्य के इस विभाग की शून्यता शीघ्र घटाने के लिए उनके अनुवाद आवश्यक प्रतीत हुए ।" (हि० सा० का इतिहास, पृ० ४११) प्रतापनारायण मिश्र, राधारचरण गोस्वामी, बाबू गदाधर सिंह (बंग विजेता', दुर्गेशनंदिनही),बाबू राधाकृष्ण, बाबू कार्तिकप्रसाद खत्री, बाबू रामकृष्ण वर्मा आदि ने बंगला उपन्यासों के अनुवाद की जो परंपरा खड़ी की, वह बहुत दिनों तक चलती रही ।

प्रेमचंद युग

प्रेमचंद के आगमन से हिंदी-उपन्यास में नया युग प्रारंभ होता है बल्कि यों कहा जाए कि वास्तविक अर्थो में उपन्यास-युग आरंभ होता है । उपन्यास-साहित्य की सृष्टि जिस उद्देश्य को लेकर हुई थी, उस उद्देश्य की पूर्ति प्रेमचंद के पूर्व के उपन्यासों द्वारा नहीं हुई ।.....प्रेमचंद ने पहली बार उपन्यास के मौलिक क्षेत्र, स्वरूप और उद्देश्य को पहचाना । पहचाना ही नहीं उसे भव्य समृद्धि प्रदान की, काफी ऊँचाई तक ले गए । (डॉ० रामदरश मिश्र) ।

यथार्थ की पकड़ प्रेमचंद के कथासाहित्य की विशेषता है । प्रेमचंद के उपन्यासों की मूलशक्ति यथार्थ के उद्घाटन में हैं । प्रेमचंद कहते हैं, "मैं उपन्यास को मानवचरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ । मानवचरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्त्व है ।" प्रेमचंद के उपन्यासों की शक्ति यथार्थ चेतना है । उन्होंने अपने समय की सामाजिक बनावट पर अपना ध्यान केन्द्रित किया और उसकी सारी अच्छाइयों-बुराइयों को अभिव्यक्ति दी । सामाजिक जीवन का गहरा अध्ययन और अनुभव होने के कारण ही उनके उपन्यासों में जिस यथार्थ का चित्रण हुआ है, यह अयंत विश्वसनीय और पाठकीय संवेदना को छूनेवाला है । (डॉ० रामदरश मिश्र, हिंदी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा, पृ ३६ में कहते हैं प्रेमचंद ने यर्थाथ के दोनों अयामों के सामाजिक और व्यक्तिगत को उभारा और उभारा ही नहीं, उत्कर्ष दिया । इसलिए यथार्थ निरूपण के क्षेत्र में प्रेमचंद का महत्त्व केवल ऐतिहासिक दृष्टि से नहीं है, स्थायी साहित्यिक मूल की दृष्टि से भी है ।"

प्रेमचंद के उपन्यास हैं सेवासदन (1918) 'प्रेमाश्रम' (1922), 'रंगभूमि' (1924), कायाकल्प (1926), 'गबन' (1930) उनका अधूरा उच्चारण है । 'प्रेमचंद मूलतः गाँधीवादी हैं और भारतीय परंपरा से उनका गहरा लगाव है । 'गोदान' (1936) के पहले के उपन्यास गाँधीवादी प्रभाव के कारण एक साँचे में हैं । 'गोदान' में वे गाँधीवाद से मुक्त हैं । मार्क्सवाद से भी उनका सरोकारार नहीं है । न तो उन्हें गाँधीवादी यूटोपिया में विश्वास रह गया है और न बलगेरिया ओर उस से आनेवाले पत्रों में छपी किसानों की खुशहाल जिंदगी की खबरों से अपने देश के किसानों की दयनीय जिंदगी का सीधा साक्षात्कार करते हैं और 'गोदान' भारतीय किसानों की मर्मस्पर्शी करुण और त्रासद्ध दस्तावेज बन जाता है ।

प्रेमचंद युग के एक महत्वपूर्ण उपन्यासकार हैं जयशंकर प्रसाद 1889-1937) । "प्रसाद मूलतः कवि हैं ।

उनके कवित्व की छाप उनके कथा-साहित्य पर देखी जा सकती है । फिर भी उपन्यासों पर यथार्थ का रंग कुछ अधिक है ।" प्रसाद ने तीन उपन्यास लिखेकंकाल 'तितली' और 'दूरावती' 'दूदावती' प्रसाद का अधूरा उपन्यास है । कंकाल ठेठ यथार्थपरक उपन्यास है । इसपर भारतेंदु हरिचंद्र के नाटक 'प्रेमयोगिनी का प्रभाव देखा जा सकता है । प्रेमयोगिनी में काशी तीर्थ के धार्मिक आडंबर को अभिव्यक्ति मिली है । इसमें काशी तीर्थ की धार्मिक रामनामी को उतारकर उसे नंगा कर दिया गया है । प्रसाद ने 'कंकाल' में प्रयाग, काशी हरिद्वार, मथुरा, वृंदावन आदि तीर्थस्थानों के अपनी कथा का केंद्र बनाया है । इन तीर्थों के मठों, मंदिरों, मेले-ठेलों में होनेवाले धार्मिक अत्याचारों में लिन्प्त बाबा लोगों को प्रसाद ने में नंगाही नहीं किया है बल्कि इन धार्मिक संस्थाओं पर भी गहरा प्रहार किया है । सारा अधर्म तो इन तीर्थों के ही होता है । उसकी शिकार मुख्यत: स्त्रियाँ होती हैं । धर्म संघ की स्थापना को वे एक ढोंग कहते हैं । इसी धर्मसंघ की छत्रछाया में धर्म की ध्वजा उठाए दाढ़ी महात्मा बन बैठे हैं ओर उसके नीचे समाज का कंकाल पड़ा है । डॉ. बच्चन सिंह, हि० का दूसरा इतिहास, पृ० 405)

'तितली' प्रेमचंद-परंपरा का उपन्यास है । 'कंकाल' यथार्थ परक है और 'तितली' आदर्शोन्मुखसार । प्रसाद का 'कंकाल' प्रेमचंद युग में [illegible] का एक नया आयाम लेकर उपस्थित होता है । यह शुद्ध यथार्थवादी कृति है जिसमें बिना किसी महत्ता या आदर्श के आरोपण के समाज की विषमता को तटस्थ भाव के से चित्रित किया गया है । (डॉ० रामपरश मिश्र) 'तितली' उपन्यास को बहुत अंशों में मनोवैज्ञानिक उपन्यास कहा जा सकता है जैनेंद्र और अश्रेय के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के आधार उपन्यास के रूप उस उपन्यास का मूल्यांकन किया जा सकता है । "तितली" में ढहती हुई सामती व्यवस्था, जमींदारी प्रथा की दुर्बलताएँ, प्रकीरण समाज की सरलता और स्वार्थ वृत्ति सम्मिलित कुटुंब की विकृतियाँ, त्योहारों के उत्सव आदि का चित्रण हुआ है । पर ये समस्याएँ गौण है । मुख्य समस्या है भारतीय जीवन दृष्टि को लेकर चलनेवाली शैला की टकराहट । इसमें भारतीय नारी के जीवन दर्शन की विजय होती है । डॉ० बच्चन सिंह हिंसा, का दूसरा इतिहास, पृ० ४०५ । प्रसाद इस उपन्यास में जिस सत्य की खोज करते हैं वह है भारतीय संस्कृतिमें नारियों का श्रद्धापूर्ण समर्पण जो (नारी की साधना का प्राण होता है । पर प्रसाद की यह खोज नारी का अपने पति के प्रति श्रद्धापूर्ण आत्मसमर्पण) आधुनिकता और बुद्धिवाद के विरुद्ध छायावादी आदर्श की पुनस्थापना मात्र है ।

इस युग के दूसरे महत्वपूर्ण उपन्यासकार हैं विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक (भिखारिणी), चतुरसने शास्त्री हृदय की परख हृदय की प्यास, अमर अभिलाषा, आत्मदाह, वयं (क्षामः, वैशाली की नगरवधू) प्रतापनारायण श्रीवास्तव विदा विजय),, शिवपूजन सहाय (देहाती दुनिया) बेनचशर्मा 'उग्र' (चंदहसिनों की करतूत, बिजली का दलाल, बुधुआ की बेटी, शराबी ऋषभचरण जैन, अनूपलाल मंडल, भगवतीचरण वर्मा (चित्रलखन, तीन वर्ष), राधिका मल्व प्रसाद सिंह राम-मोहन, सियारामशरण (गुप्त नारी, गोद), भगवती प्रसाद वाजपेयी, वृंदावनलाल वर्मा, राहुल 1.2.4 **कृत्यायन एवं निराला**

प्रेमचंदोत्तर

प्रेमचंदोत्तर युग में यथार्थ के विविध आयायों की अभिव्यक्ति हुई । इस युग में मनोवैज्ञानिक,

सामाजवादी-सामाजिक, ऐतिहासिक तथा आंचलिक उपन्यास लिखे गए । "प्रेमचंद ने यथार्थ के जिन दो आयामों (सामाजिक और मनोवैज्ञानिक) का उद्घाटन किआ वे प्रेमचंद के बाद अलग-अलग धाराओं में बँटकर तथा अपनी-अपनी धारा के अन्य अनेक सूक्ष्म बातों से संश्लिष्ट होकर बहुत तीव्र और विशिष्ट रूप में विकसित होते गए । अत: एक ओर मनोविज्ञान की धारा बही दूसरी ओर समजवाद की । मनोविज्ञान की नयी धारा-प्रेमचंद के मनोविज्ञान से वस्तुत: अलग धारा थी जो मनोविज्ञान की नवीन खोजों से प्राप्त सत्यों को आधार प्रेमचंदोत्तर युग में समाजवादी उपन्यास बनाकर चली जिसका संबंध मूलत: अंतरचेतना के लोक से है चेतना के लोक से नहीं । मनोविज्ञान की इस नई धारा ने न केवल मनोविश्लेषण शास्त्रियों द्वारा उद्घाटित रहस्यों को अपनाया बल्कि प्रतीकवाद, अस्तिरववाय, प्रतीकवाद आदि द्वारा गृहीत मानव-सत्यों को भी आत्मसात किया । कहने का अभिप्राय यह है कि यह अंतरलोक की यात्रा है जिसमें बाहरी दुनिया से निरपेक्ष होकर या बाहरी दुनिया को अपनी ओर उन्मुखर मानस-सत्यों का साक्षात्कार किया गया है । इस अंतरयात्रा का परिणाम उपन्यास के गठन पर भी पड़ा और इस धारा के उपन्यासों के कथा विन्यास पात्र-रचना, देशकाल आदि का स्वरूप वह नहीं रहा जो प्रेमचंद के उपन्यासों या सामाजिक उपन्यासों में दिखाई पड़ता है । (डॉ० रामदरश मिश्र, हिंदी उपन्यास एक अंतर्यात्रा)

प्रेमचंद के सामाजिक उपन्यासों की परंपरा में ही लिखे गए पर ऐसे उपन्यास मार्क्सवादी दृष्टिकोण के कारण प्रेमचंद के सामाजिक उपन्यासों से थोड़े अलग हैं । प्रेमचंदोत्तर युग में सामाजिक जीवन के यथार्थ पर उपन्यास लिखे गए जिनमें हिंदी आदर्शों का आरोप नहीं है । 'गोदान' को छोड़कर प्रेमचंद के दूसरे उपन्यास सामाजिक यथार्थ के उपन्यास होते हुए भी आदर्शों की प्रतिष्ठा के कारण नितांत यथार्थवादी उपन्यासों से सर्वथा अलग हैं । "प्रेमचंदोत्तर सामाजिक और सामावादी उपन्यास सामाजिक चेतना की दृष्टि से प्रेमचंद की परंपरा में आते हैं किंतु कुछ बातें ऐसी हैं जो इन्हें अलग भी करती है । (डॉ० रामदरश मिश्र, पृ० 65) सूरज का सातवाँ घोड़ा' (धर्मवीर भारती), 'अधेरे बंद कमरे' (मोहन राकेश), 'भूले' बिसरे चित्र' (भगवती चरण वर्मा) आदि उपन्यास सामाजिक उपन्यास अवश्य हैं, पर इनमें मार्क्सवादी अंतर्दृष्टि व्याप्त है । प्रेमचंदोत्तर सामाजिक उपन्यास मार्क्सवादी अंतर्दृष्टि और मनोविज्ञान के अन्श्चेतनावाद से प्रभावित हैं । मनोविज्ञान की अन्श्चेतनावाद से प्रभावित होने के कारण ही प्रेमचंदोत्तर सामाजिक उपन्यास में यौन कुंठा पात्रों की टूटन, चेतन-प्रवाह, प्रकृत वाद, प्रतीकात्मकता आदि का भी चित्रण मिलता है ।

प्रेमचंद के बाद के युग में ऐतिहासिक उपन्यासों में यथार्थवादी दृष्टि का विकास हुआ है । प्रेमचंदोत्तर युग मं आंचलिक उपन्यास लिखे गए । ये आंचलिक उपन्यास जिस जनचेतना के आधार पर लिखे गए हैं, वह इन्हें प्रेमचंद की परंपरा से जोड़ती है । ऐसे उपन्यास उपन्यास ही नई विधा के रूप में स्वीकृत किए जाने चाहिए, क्योंकि एसो आंचलिक उपन्यासों में विशेष भूभागीय जन-संस्कृति के विशिष्ट भिन्नात्मक संबंधों और अपनों की अभिव्यक्ति हुई है । वास्तव में औपचत्मिक उपन्यास जनतांत्रिक भावना और जनसंस्कृति की सच्ची अभिव्यक्ति के रूप में ही उदित हुए ।

1.2.5. प्रेमचंदोत्तर युग के प्रमुख उपन्यासकारों ने मनोवैज्ञानिक समाजवादी-सामाजिक, ऐतिहासिक तथा आंचलिक उपन्यास लिखे। आधुनिकता, नव्यप्रगतिवाद (जनवाद) ओर उत्तर आधुनिकतावाद के दर्शनिक

परिप्रेक्षय में अनेक सामाजिक प्रसंगों के उपन्यास अस्तित्व में आए । आगे की पंक्तियों में संक्षेप में उनका इतिवृत प्रस्तुत करने का प्रयास करूँगा ।

1.2.5. मनोवैज्ञानिक उपन्यास:

प्रेमचंद कथा के लिए मनोविज्ञान को अनिवार्य मानते हैं । उनके उपन्यासों और कहानियाँ में मनोविज्ञान से अपेक्षित सहायता ली गई है । पर, प्रेमचंद के कथा-साहित्य को मनोवैज्ञानिक कथा-साहित्य के नाम से नहीं जाना जाता । आज मनोवैज्ञानिक कथा-साहित्य का अर्थ पूर्व से भिन्न एवं विशेष संदर्भो में गृहीत है । प्रेमचंदोत्तर युग में लिखे गए मनोवैज्ञानिक उपन्यास वास्तव में मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास हैं जिनमें मस्तिष्क के चेतन, उपचेतन और अवचेतन विभागों में से अवचेतन को विशेष महत्व प्रदान किया जाता है । अवचेतन ही हमारे समस्त कार्य-व्यापारों और व्यक्तित्व का नियंता और निर्मता होता है । मूल रूप से मनुष्य वह नहीं है जो वह ऊपर-ऊपर सतह पर दिखाई पड़ता है, बल्कि वह है जो उसके भीतर अनभिव्यक्त रूप से प्रच्छन्न है । अवचेतन में मनुष्य की कुछ आदिम वासनाएँ वर्तमान रहती हैं जिन्हें फ्रायड यौन वासनाओं, एडलर हीनता की भावनाओं और युग जीवन की इच्छाओं के रूप में विश्लेषित करते हैं । प्रेमचंद ने सामान्य मनोविज्ञान के आधार पर सामाजिक यथार्थ के उपन्यास लिखे । उनके वाद के युग में सामान्य मनोविज्ञान के साथ-साथ विशेष मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों और पात्रों से संबद्ध उपन्यास लिखे गए जिनमें सामाजिक यथार्थ को अभिव्यक्त करने के स्थान पर अचेतन मन के रहस्यों को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया ।

जैनेंद्र (1905.1988) का हिंदी साहित्य के औपन्यासिक क्षेत्र में आना एक घटना है । उनके साथ ही हिंदी उपन्यास अपनी परंपरा से विच्छिन्न हो जाता है या सर्वथा एक नई दिशा की ओर मुड़ जाता है । यह दिशा आधुनिकवाद की दिशा है । वे हिंदी के पहले आधुनिकतावादी कथाकार हैं । उनके पूर्ववर्ती और समकालीन उपन्यास विशिष्ट सामाजिक संस्था थे । कोई यथार्थवादी था तो कोई आदर्शवादी । उनमें घटनाओं, आंदोलनों सामाजिक विकृतियों की प्रमुखता थी । कथानक, चरित्र चित्रण, देशकाल, वर्णन, कहन आदि की दृष्टि से वे एकरूप थे ।"(डॉ० वच्चन सिंह, हि० सा० का दूसरा इतिहास, पृ० ४०६) जैनेंद्र हिंदी औपन्यासिक क्षेत्र में एक क्रांति लेकर आए । उन्होंने उपन्यास के कथ्य, उसकी बुनावट और सौंदर्यशास्त्र को पूर्णत: परिवर्तित कर दिया । प्रेमचंद समाज का मंथन करते हैं और जैनेंद्र मानस का । प्रेमचंद समाज के यथार्थ को चित्रित करते हैं और जैनेंद्र व्यक्तिमन के यथार्थ को । प्रेमचंद संश्लिष्ट सामाजिक यथार्थ को चित्रित करते हैं और जैनेंद्र व्यक्ति मन की जटिलता को । प्रेमचंद काल की समग्र चेतना को महत्व देते हैं और जैनेंद्र काल की लघु चेतना को, यानी प्रेमचंद जीवन के विस्तृत सामाजिक यथार्थ को चित्रित करते हैं और जैनेंद्र व्यक्तिमन की लघुता में प्रच्छन्न अनंत रहस्यों में ही से किन्हीं दो चार रहस्यों के उद्घाटन की ओर उन्मुख होते हैं । जैनेद्र बिंदु सत्य के उद्घाटन की ओर उन्मुख होते हैं जैनेंद्र बिंदु सत्य के उद्घाटन हैं ओर प्रेमचंद सिंधु-सत्य के 'जैनेंद्र का व्यक्ति बहुत कुछ सामाजिक यथार्थ से निरपेक्ष एक विशिष्ट दायरे में घूमता दिखाई पड़ता है । कथा की दुनिया व्यक्तिमत के भीतर अधिक चलता है बाहर कम । इसीलिए घटना की स्थूलता, बहुलता और विविधा के स्थान पर उसकी सूक्ष्मता ओर स्वल्पता गृहीत होती है । सारा संघर्ष भीतरी होता है, अर्थात् वह समाज के भीतर नहीं, व्यक्ति के मन के भीतर चलता है । (डॉ० रामदरश मिश्र, हिंदी उपन्यास एक अंतर्यात्रा पृ० 78) डॉ० बच्चन

सिंह जैनेंद्र के संबंध में कहते हैं जैनेंद्र ने उपन्यास का एस्थेटिक्स बदल दिया । उपन्यास स्वयं में अधिक स्वायत्त हो गया । उनका उपन्यास समाज या व्यक्ति को बदलने का दावा नहीं करता और न ठोस मौजूद पदार्थों से एसका कोई नाता है । उसकी नई भाषिक संरचना, काव्यात्मकता और प्रतीक-विधान, कारण-चेतना आदि में जो परिवर्तन आया उसे षट्तत्ववादी सिद्धांतों से नहीं परखा जा सकता (सब मिलाकर वह एक पैटर्न बनाता है जिसमें परिस्थगत व्यक्ति चिंताग्रस्त होकर अंतर्मथन करता है । परंपरित उपन्यासों में व्यक्ति या समूह समाज से लड़ता है तो जैनेंद्र के उपन्यासों के व्यक्ति अपने से लड़ते हैं । उनमें स्थूल सामाजिक नैतिक संघर्ष के स्थान पर आत्मस्थनैतिक संघर्ष और जटिल मानसिकता मिलती है । इस तरह की विषयवस्तु लेकर लघु उपन्यास ही लिखें जा सकते हैं । हि० सा० का दूसरा इतिहास, पृ० 407)

जैनेंद्र ने 'परख' (1929), 'सुनीता' (1135), 'त्यागपत्र' (1937), 'कल्याणी', 'सुखदा', विवर्त, 'दशार्क', आदि उपन्यास लिखे । परख जैनेंद्र का पहला उपन्यास है । इस उन्यास में रहस्य, दर्शन, जिज्ञासा और विस्मय का सम्मिश्रण है । इस उपन्यास में कट्टों का प्रश्न एक अर्थवान अनुगूँज की तरह है जो शब्दों को सामाजिक परिदृश्य में बहुत कुछ सोचने पर विवश करता है । कट्टो कहती है "बिहारी बाबू बिहारी बाबू, क्या यह नहीं दो सकता- क्या हम भी दो ऐसे नहीं हो सकतेदूर फिर भी बिल्कुल पास अलग, फिर भी अभिन्न दो फिर भी एक एक ही उद्देश्य एक ही जवन-लक्ष्य में पिरोए हुए ?"

सुनीता जैनेंद्र के श्रेष्ठ उपन्यासों में परिगणित है । इसी उपन्यास में उनकी मनोविश्लेषणात्मक शक्ति का प्रस्फुटन हुआ है । इसका कथानक अत्यंत झीना है । इसमें विवाह और प्रेम की समस्या घर की रकसरता की समस्या की ही इसमें प्रतीकारात्मक अभिव्यक्ति होई है श्रीकांत और सुनीता का पारिवारिक जीवन सुखी है पर उसमें माधुर्य का अभाव है । सुनीता से ज्यादा श्रीकांत बँधे हुए जीवन से नीरसता का अनुभव करता है । विवाह एक सामाजिक संस्था हे जिसका अर्थ इस उपन्यास में खो गए हैं । श्रीकांत के मित्र हरिप्रसन्न का प्रवेश श्रीकांत के घर में होता है । श्रीकांत द्वारा सुनीता को आदेश मिलता है कि वह कुंठित और अव्यवस्थित हरिप्रसन्न की कुंठा (यौन-कुंठा) को होते । पतिपरायणा सुनीता इसके लिए तैयार हो गयी है । एक दिन वह हरिप्रसन्न के सामने अनावृत्त होती है और हरिप्रसन्न (क्रांतिकारी हरिप्रसन्न) वहाँ से भाग खड़ा होता है ।" हरिप्रसन्न के सामने सुनीता का अनावृत्त होना सिनकल जरूर लगता है पर वह सोद्देश्य है । उसके माध्यम से स्वयं को ही अनावृत्त नहीं करती, क्रांतिकारी हरिप्रसन्न को भी अनावृत्त करती है । इससे श्रीकांत के एकरसता को तोड़ने की योजना भी अनावृत्त होती है । सत्य को ढूँढ़ने के लिए आवणों को हटाना पड़ेगा लेकिन जीने के लिए आवरण जरूरी है । हरिप्रसन्न का बनाया हुआ क्रूसी फिकेशन का चित्र सबका ब्रूसी फिकेशन है । अंततः यह प्रश्नों का उपन्यास बन जाता है स्त्री क्या है १. पुरुष क्या है ? और कम्बख्त क्या चीज है जिसे प्रेम का नाम देकर आदमी ने चाहा बाँध दे, पर जो वैसे ही न बाँध सका जैसे वृक्ष से आँधी नहीं बँध सकती । वह क्या है ? कौन है ?

जैनेंद्र के सारे उपन्यासों की समस्या घर-बाहर का द्वंद्व है । सुनीता ओढ़े हुए 'घर-बाहर के द्वंद्व का उपन्यास है । बाहर (हरिप्रसन्न) घर (श्रीकान्त का जीवन) में प्रवेश करता है । इससे श्रीकांत ही एकरसता टूटती है और विवाह रूपी तालाव विक्षुब्ध होता है । इससे घर के टूटने की समस्या आती है । पर , जैनेंद्र न 'घर' को

तोड़ते हैं और न 'बाहर' को । हरिप्रसन्न के अवचेतन दुर्ग में जैनेंद्र प्रवेश करते हैं और उसमें प्रच्छन्न 'लिविडो' को प्रस्तुत करने का प्रयास करते हैं ।

त्यागपत्र (1937) जैनेंद्र का महत्वपूर्ण उपन्यास है । इसके संबंध में डॉ० बच्चन सिंह कहते हैं कि यह "छायावादी वेदना की गद्यात्मक विवृत्ति है । इसके संबंध में डॉ० रामदरश मिश्र कहते हैं," चिंतन की एकांगिता, असंगति और नाकारात्कता के बावजूद उपन्यास की महत्ता को अस्वीकर नहीं किया जा सकता । उपन्यास अपने चिंतन के कारण नहीं, अपनी तीव्र संवेदनशीलता, सांकेतिकता और जीवंत यातना के कारण बहुत ही प्रभावशाली है ।" (हिंदी उपन्यास एक अंतर्यात्रा, पृ० 84)

इस उपन्यास के संबंध में आगे के पृष्ठों में विस्तारपूर्वक चर्चा की जाएगी । 'त्यापत्र' के बाद जैनेंद्र अपने को दुहराने लगते हैं ।" घर के घेरे में बाहर वे स्वयं नहीं जाते । बाहर जाकर भी घर में लौट आते हैं । बाहर के खुलेपन से, जीवन की हलचलों से मुक्त उनके पात्र मनोरोगी, आत्महंता ओर निर्वासित हैं-स्त्रियाँ अहमग्रस्त और पुरुष नपुंसक । किंतु उपन्यास की नई रूपात्मक आधुनिक प्रविधियों से हिंदी उपन्यास में कुछ नया अवश्य जुड़ा है ।" (डॉ० बच्चन सिंह, हि.सा.का दूसरा इतिहास, पृ० 10)

इलाचंद्र जोशी हिंदी के प्रसिद्ध उपन्यासकार है । वे समाजवादी मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार हैं । एक ओर वे अभिजात वर्गीय अहं पर चोट करते हैं ओर दूसरी ओर व्यक्ति के मन के विभिन्न सत्यों का उद्घटन करते हैं । उनपर तीनों विश्लेषणवादियों का प्रभाव है । जोशी जी चूँकि सामूहिक अंतश्चेतना, से बहुत हद तक सहमत हैं, अत: वे युग के सर्वाधिक निकट हैं । वे अंतश्चेतना के विश्लेषण के साथ ही सामाजिक जीवन से दूरी पैदाकरनेवाली उसकी वृत्तियों पर भी चोट करते हैं, यानी वे मनुष्य के उास अहं भाव का विरोध करते हैं जिसके चलते मनुष्य लोकजीवन से कटकर अपने लिए अभिजात जीवन की सुविधाओं और संस्कारों में शंरण ढूँढ़ने को बाध्य होता है ।

जोशी जी के पात्र व्यक्ति होते हैं किंतु उन्हें वे समाज से जोड़ते हैं सामाजिक हित के लिए नहीं, बल्कि उनकी विसंगतियों को उजागर करने के लिए उनके आचरण के वैषम्य को दिखाने के लिए ।" डॉ० रामदरस मिश्र पृ० 46) जोशी के पसिद्ध उपन्यास हैं 'सन्यासी (194) 'पदैकी दानीं (1941), 'प्रेत और छाया (1945) 'निर्वासित' (1946)' 'जिप्सी' (1953), 'जहाज का पंछी (1965), लज्जा, 'मुक्तिपथ' और सुबह के भूले'।

अज्ञेय के मनोवैज्ञानिक उपन्यास अत्यंत प्रौढ़ हैं 1941 में उनका प्रसिद्ध उपन्यास 'शेखर एकजीवनी' प्रकाशित हुआ । इससे हिंदी उपन्यास के क्षत्र में एक नवीन प्रयोगशील संरचना का सूत्रपात हुआ । कथ्य, शिल्प ओर भाषा की दृष्टि से यह उपन्यास अपने पूर्ववर्ती उपन्यासों से कुछ हटकर था । अज्ञेय कविता के साथ उपान्यासों में भी प्रयोगशील थे । यह उपन्यास व्यक्ति स्वातंत्र्य पर अधृत है । शेखर परंपराभंजक और ज्ञवरतंत्र्यचेता है, प्रखर विद्रोही है । समाज के सारे प्रतिबंधों और परंपरित सारी मर्यादाओं को तोड़कर वह अपनी अस्मिता का निर्माण करता है । पर, अंत में वह स्वयं टूट जाता है । व्यक्तिगत विद्रोह की यही नियति होती है, क्योंकि सामाजिक चेतना के अभाव में उसका लक्ष्य स्पष्ट नहीं होता, अपनी भ्रांत सीमाओं में ही चक्कर काटता रहता है । इसमें संदेह नहीं कि चेतना-प्रवाह प्रतीकारात्मकता और भाषा की आंतरिकता के कारण यह उपन्यास अपने में अप्रतिम है, पर एक ही ऐमैंटिक आदर्श के कारण और दूसरे, आत्मकौप्रित होने के फलस्वरूप

इसका वियोजन रचनात्मक बनते-बनते रह गया है । (हिंदी सहित्य का इतिहास सं० डॉ० नरेंद्र पृ० 690) शेखर: एक जीवनी दो भाग-1944) प्रामाणिक अनुप्रतियों को निश्छल अभिव्यक्ति से परिपूर्ण है । शेखर अपनी अनुभूतियों को ही अभिव्यक्त करता है । इस संदर्भ में इसकी ईमानदारी इसके उसके व्यक्तिगत को एक विशेषत्व देती है, साथ-ही-साथ उसकी ईमानदार अभिव्यक्ति आर्थिक उपन्यासकार को सर्जना के स्तर पर ईमानदार बनाती-यही इस उन्यास की विशेषता है ।

"अज्ञेय में मनोविश्लेषण की गहन क्षमता है, जाग्रत और सूक्ष्म सौंदर्य बोध है, कला के प्रति ईमानदारी की चेतना है और अनुकूल शिल्प-सृष्टि करने की क्षमता है अत: इनके उपन्यास सर्वत्र और सभी रूपों में सर्जनात्मकता की चेतना से संपन्न है । डॉ० रामदरश मिश्र पृ० 90) अज्ञेय के दूसरे उपन्यास है-नदी के द्वीप (1951) और अपने अपने अजनबी (1961) नदी के द्वीप प्रेम से भटका हुआ काम का आख्यान बनकर रह गया है । यह यथार्थवादी उपन्यासों के पैटर्न से अलग नितांत आधुनिक और बौद्धिक उपन्यास है जिसमें 'काम' को आधुनिक संदर्भों में नई व्याख्या प्राप्त है । अज्ञेय का तीसरा उपन्यास अपने-अपने अजनवी भी प्रयोग का उपन्यास है । डॉ० रामदरश मिश्र इस उपन्यास को अरितावववादी जीवन-दर्शन का उपन्यास मानते हैं, डॉ० बच्चन सिंह इस उपन्यास को अस्तित्ववाद दर्शन के खंडन का उपन्यास मानते हैं । इसमें मुख्य समस्या स्वतंत्रता के वरण की है जो संयु अकेलेपन, बेगानगी, मृत्युबोध, अजनबीपन आदि से सहज ही संयुक्त हो गई है । रचतंत्रता को अहंकार से जोड़कर अज्ञेय ने इसमें अस्तिववादी स्वतंत्रता के मूल अर्थ को ही बदल दिया है । अज्ञेय के तीनों उपन्यासों में शेखर एक जीवनी' जीवन की प्रखरता को सबसे अधिक प्रौढ़ता के साथ अभिव्यक्त करता है ।

1.2.5.2 समाजवादी और सामाजिक उपन्यास

प्रेमचंदोत्तर युग के सामाजवादी और सामाजिक उपन्यासों में प्रमुख हैं सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, यशपाल, अमृतलाल नागर, उपेंद्रनाथ अश्क, भगवती चरण वर्मा, धर्मवीर भारती, नरेश मेहता, भैरवप्रसाद गुप्त, मोहन राकेश, लक्ष्मीनारायण लाल आदि ।

'निराला' के 'बिल्लेसुर बकरिहा को लघु उपन्यास कंहा जा सकता है । इसमें बितलेसुर ब्राह्मण होकर भी बकरी चराता है । लोग उसका विरोध करते हैं, पर वह उस विरोध से बेपरवाह है । वह अपनी जाति को चुनौती देता हुआ अकेले जीता है । जब उसके पास पैसा इकट्ठा हो जाता है तो उसकी जाति के ही उसे अपने में मिलाने खोज का प्रयत्न करने लगते हैं । अप्सरा 'अलका' 'निरुपमा', 'प्रभावती', 'चोटी की पकड़' और 'काले कारामा में उनके दूसरे उपन्यास हैं ।

यशपाल मार्क्सवादी विचार धारा के उपन्यासकार हैं । 'प्रेमचंदोत्तर उपन्यासकारों में अपनी विशिष्ट विचारधारा और रचनात्मक शक्ति के कारण यशपाल ने स्वतंत्र व्यक्तित्व बना लिया है । 'गोदान' मैं प्रेमचंद ने आदर्शवाद से बहुत कुछ मुक्त मुक्त होकर जिस यथार्थवादी दृष्टिकोण को ग्रहण किया था, उसी परंपरा को आगे बढ़ाने का श्रेय यशपाल को है । समाजवादी यथार्थ के उनके प्रसिद्ध उपन्यासों में 'दादा कामरेड' (1141) 'झूठा सच' (दो भाग, 1958, 1960), तथा मेरी तेरी उसकी बात (1973) के नाम उल्लेख योग्य है ।

'अमिता' और 'दिव्या' उनके प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास हैं । 'झूठा सच' में जीवन के विविध प्रसंगों, रूपों, आयामों, समस्याओं तथा जाटिल्य को प्रभावशाली सैली में प्रस्तुत किया गया है । मार्क्शवादी विचाधारा की सीमाओं में आबद्ध होने के कारण उनकी रचनाओं में विश्वास अनुस्यूत नहीं हो सका है । वे अपने बाड़ के बाहर की विस्तृत जीवनशैली को अपनी रचनाओं में स्थान नहीं दे सके हैं । 'दिव्या' में उन्होंने स्त्रीत्व को सपृहणीय गौरव प्रदान किया है ।

अमृत लाल नागर ('बूँद और समुद्र', 'अमृत और विष' शतरंज के मोहरे 'सुहाग के नूपुर', मानस के हंस, 'खंजन नयन', एकदा नैमिषारण्ये', उपेंद्रनाथ अश्का (बड़ी बड़ी आँखें गिरती दीवारें , 'गर्म राख, 'शहर में घूमता अईना', पत्थर-अल-पत्थर', 'सितारों के खेल',) भगवती चरण वर्मा ('भूले बिसरे चित्र', 'तीन वर्ष', 'टेढ़े मेढ़े रास्ते', 'आखिरी दाँव', 'अपने खिलौने रेखा सामर्थ्य और सीमा, सबहिं नचावत राम गुसाई), धर्मवीर भारती ('सूरज का सातवाँ घोड़ा', 'गुनाहों के देवता' नरेश मेहता (यह पथ बुधे था', 'डॅबते मस्तूल' 'धूमकेतु' एक श्रुति दो एकांत') भैरव प्रसाद गुप्त ('गंगा मैया', 'सत्ती मैया का चौरा'), मोहन राकेश (अँधेरे बंद कमरे) लक्ष्मीनारायण, 'बड़ी चंपा, छोटी चंपा', 'काले फूल का पौधा', बया का घोंसला और साँप, 'धरती की आँखें', 'मन वृंदावन') आदि उपन्यासकारों ने समाजवादी ओर सामाजिक उपन्यास लिखकर हिंदी साहित्य की उपन्यास विद्या को समृद्धि प्रदान

1.2.5.3 ऐतिहासिक उपन्यास

जयशंकर प्रसाद (इरावती, अधूरा उपन्यास) वृंदावनलाल वर्मा (गढ़ कुंडार विराट की पद्मिनी झाँसी की रानी, मृगनयनी, कचनार, कुण्डलीचक्र, अहिल्याबाई,प्रेम की भेंट भगवती चरणवर्मा (चित्रलेखा-1954') राहुल सांकृत्यायन 'सिंह सेनापति जय यौधेय') चतुरसेनशास्त्री (वैशाली की नगर बधू, सोमनाथ, वयं रक्षाम: शपाय (दिव्या), हजारीप्रसाद द्विवेदी (-बरणभट्ट की आत्कथा-चारू चंद्रलेख 1163 'पुनर्नवा', 'अनामदास का पोथा' रांगेय राघव 'मुर्दो का टीला 1948), अमृतलाल नागर । (शतरंज के मोहरे 1959), आनंदप्रकाश जैन कुण्डाल की आँखें 1967 आदि उपन्यासकारों ने ऐतिहासिक उपन्यास लिखकर हिंदी की दक्ष विधा को समृद्ध किया ।

1.2.5.4 आंचलिक उपन्यास

''आंचलिक उपन्यासों में अंचल अपनी संपूर्ण विविधता और समग्रता के साथ नायक होता है । अंचल के जीवन की सारी परंपराओं, ऐतिहासिक प्रगतियों, अशक्यिों, छविया-अछवियों को जितनी ही अधिक सच्चाई से लेखक पकड़ सकेगा, अंचल जीवन के चित्रण में वह उतना ही सफल होगा । ''(डॉ० रामदरश मिश्र) आंचलिक उपन्यासकारों में नागार्जुन, फणीश्वरनाथ रेणु, उदयशंकर भट्ट ('सागर लहरें और मनुष्य- 1955), रांगेय राघव (कब तक पुकारूँ') देवेंद्र सत्यार्थी ('ब्रह्मपुत्र'), शैलेश मटियानी (हवलदार) तथ राजेंद्र अवस्थी ('जंगल के फूल') उल्लेखनीय हैं ।

नागार्जुन के उपन्यास आंचलिक ओर सामाजवादी उपन्यासों के बीच पड़ते हैं । आचलिक उपन्यासों में किसी अंचल विशेष की समूची संशिलष्ट जिंदगी अभिव्यक्त होती है । नागार्जुन ने अपने उपन्यासों 'रतिनाथ की चाची

(1948), 'बलचनमाँ' (1952) नयी पौध (1953) बाबा बटेसरनाथ (1954) 'दु:खमोचन' (1957) 'वरुण के बेटे' (1957) आदि में अंचल विशेष के जीवन को संश्लिष्ट समग्रता में नहीं लिया है, उन्होंने अंचल विरोध के पात्रों के माध्यम से सामाजिक यथार्थ का चित्रण किया है । डॉ० रामदरश मिश्र कहते हैं "मूलत: नागार्जुन के उपन्यासों की भूमि अंचल विशेष है किंतु आंचलिक उपन्यासों की सी समग्रता जटिलता, विविधता उनमें नहीं है । वे प्रेमचंद की-सी शिल्प-परंपरा के उपन्यास हैं ।" हिंदी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा, प्र० 191) मार्क्सवादी दृष्टिकोण को गाँव की थीम पर आरोपित करने के कारण नागार्जुन के उपन्यासों की सर्जनात्मकमता शिथिल और बाधित है । नागार्जुन प्रेमचंद और यशपाल की कथा-परंपरा में आते हैं । यदि उन्होंने इन दोनों परंपराओं में समवन्य का रचनात्मक प्रयास किया है तो निश्चित रूप से उनके उपन्यास मील के पत्थर सिद्ध होते । जहाँ उन्होंने अपनी विचारधारा का प्रक्षेपण किया है, वहाँ उनका उपन्यास असहज एवं बनावटी हो गया है । 'वरुण के बेटे' उनका स्वस्थ उपन्यास है ।

फणीश्वरनाथ रेणु (1921-1977) श्रेष्ठ आंचलिक उपन्यासकार हैं । उनके कथा साहित्य में अंचल विशेष की जेहालत अंधविश्वास भोलापन, तिकड़म, माटी की महक, लोकसंस्कृति गाँव की बोली को जिस समग्रता में साकार किया है वह अद्वितीय है ।" डॉ० बच्चन सिंह हि० सा० का दूसरा इतिहास पृ० 576) मैला अंचल, परती परिकथा' उनके आंचलिक उपन्यास हैं । यह सर्वमान्य है कि 'मैला आँचल' और 'परती परिकथा' में ग्रामांचलों का जितना विशाद और बोलता हुआ चित्र प्राप्त होता है, उनता अन्यत प्राप्त नहीं होता । मैला आंचल' उपन्यास परती परिकथा से अन्तस्संबद्ध है । यानी, दोनों उपन्यास पूरकधर्म के रूप में एक-दूसरे से जुड़े हैं । 'मैला आंचल' तनकर 'परती परिकथा तक व्याप्त हो जाता है । रेणु इन दोनों उपन्यासों में आस्थावादी है । जीवन के प्रति उनकी आस्था उनके उपन्यासों को सार्थकता प्रदान करती है । इन दोनों उपन्यासों में ग्रामांचल की छोटी-छोटी घटनाओं, कथाओं, आचार-विचार, रीति-नीति- राजनैतिक व नैतिक अवधारणाओं पारस्परिक संबंधों आदि के विश्लिष्ट चित्र मिलते हैं, तो पूरे अंचल के संदर्भ में संशिलष्ट और गत्यात्मक हो गए हैं । (हि० सा० इ०, डॉ० नागेंद्र, पृ० 697) रेणु के दोनों उपन्यास आंचलिक उपन्यासों के लिए प्रतिमान गढ़ते हैं । अपने अपने रूपायण और परिणति में रोमैंटिक एवं आदर्शवादी होने के कारण ये दोनों उपन्यास अत्यंत आकर्षक हैं । परती परिकथा' में ताजमनी का प्रेम अत्यंत गरिमापूर्ण है । ताजमनी का गरिमामय प्रेम अविस्मरणीय है ।

सात घरों का गाँव (ठाकुर प्रसाद सिंह), 'जल टूटता हुआ (रामदरश मिश्र), रथ के पहिए (हिमांशु श्रीवास्तव) तथा सोनामाटी' (विवेकी राय) हिंदी के महत्वपूर्ण ग्रामीण अंचल के आंचलिक उपन्यास हैं ।

1.2.5.5. प्रयोगशील उपन्यास

उपन्यासों में जीवन पूर्णत: विश्लेषित न होकर चेतना-प्रवाह और स्वप्न-सृष्टि के साथ जुड़ गए । प्रतीकत था टाइम शिफ्ट के लिए शिल्प से उपन्यासों की संरचता में बदलाव आया । प्रभाकर माघवे (परंतु साँचा । रुद्र (बहती गंगा), गिरिधर गोपाल ('चाँदनी रात के खंडहर') सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ('सोया हुआ जल), नरेश मेहता डूबते मस्तूल') ख्वाजा (एक चूहे की मौत) बदी उज्जामा प्रयोगशील उपन्यासकार हैं ।

1.2.5.6 आधुनिकता के उपन्यास

मोहन राकेश ('अंधेरे बंद कमरे' न आनेवाला कल), निर्मल वर्मा ('वे दिन) राजकमल चौधरी ('मछली मरी हुई) कमलेश्वर (डाक बंगला) महेंद्र भल्ला (एक पति के नोट्स) श्रीलाल शुक्ल (रांगदरबादी), मन्नू भंडारी (आपका बंटी), भीष्म साहनी (तमस'), गिरिराज किशोर ('जुगलबंदी'), उषा प्रियंवदा ('पलवन खंभे लाल दीवार), जगदंब प्रसाद दीक्षित (मुर्दाघर) रमेश बक्षी (अठारह सूरज के पौधे) कृष्णा सोबती ('डार से बिछड़ी', मित्रों मरजानी') आदि उपन्यासकार आधुनिकता बोध के उपन्यासकार हैं ।

1.2.5. नई दृष्टि: नए उपन्यास

सातवें दशक से 20वीं शताब्दी के अंत तक नई दृष्टि के अनेक नए उपन्यास लिखे गए जिनमें प्रमुख हैं:

'सूरज मुखी अंधेरे के (कृष्णा सोबती) 'अलग-अलग वैतरणी (शिवप्रसाद सिंह), चितकोबरा (मृदुला गर्ग), आधा गाँव, टोपी शुक्ला, हिम्मत जौनपुरी, दिल का सादा कागज (राही मासूम रजा) आदि । कहना नहीं होगा कि इस दौर के हिंदी उपन्यासों में निम्न मध्यवर्ग, उच्च मध्यवर्ग और उच्च वर्ग के नर-नारी संबंधों को विश्लेषित परिभाषित करने की जारदार कोशिश की है । इस कार्य में मनोविश्लेषण शास्त्र की नयी खोजों ने भी नयी दिशा-दृष्टि से भारी मदद की है । (हि० सा० का इतिहास सं० डॉ० नागेंद्र पृ० 705) प्रेम और सेक्स पर और महिला उपन्यासकारों ने अनेक उपन्यास लिखे । उनके उपन्यासों में नर-नारी के काम-संबंधों की मनोवैज्ञानिकता पर प्रकाश डाला गया । परिववार के टूटने में काम के हस्तक्षेप को भी विषय बनाकर अनेक उपन्यास लिखे गए । पर उनमें अंचल विशेष को संस्कृति तथा जीवन की समग्र संशिलष्टता का नितांत अभाव था । यही कारण है कि आंचलिक उपन्यास लिखने की परंपरा सातवें दशक के बाद लगभग समाप्त हो गई और उसके स्थान पर शहर के मध्यवर्ग की समस्यायों, संघर्षों, चुनौतियों और विभिन्न परिस्थितियों की ओर उपन्यासकार उन्मुख हुए । गिरिधर गोपाल के प्रसिद्ध उपन्यास 'कंदील और कुहासे' में बेकार युवक की दर्दनाक मौत की कहानी है । 'बेघर' में ममता कालिया ने मुंबई महानगर के जीवन की त्रासदी को प्रस्तुत किया है । लक्ष्मीकांत वर्मा का उपन्यास 'टैरीकोटा' भी महानगरीय (दिल्ली) विडंबना का चित्रण करता है । इसका एक पात्र रोहित कहता है," आज भी दिल्ली में आदमी संत्रस्त है, टूटा हुआ है, क्षत-विक्षत है, पंगु है । फर्क केवल इतना है कि आज की पंगुता मानसिक है और आज से पहले हस्तिनापुर की पंगुता कायिक थी ।" (पृ०8)

इधर के कुछ उपन्यासों में एक नई प्रवृत्ति उभरी है (विदेशों में रहनेवाले भारतीय परिवारों के निरर्थक भौतिक, अकेलेपन और ऊठा भरी जिंदगी का चित्रण तथा दो संस्कृतियों की टटकराहट ऐसे उपन्यासों में विस्तार के साथ चित्रित हुई है । इस टकराहट से जिस मानसिक विक्षोभ और तनाव की सृष्टि होती है उसे ऐसे उपन्यासों में विशदता के साथ प्रस्तुत किया गया है । जीवन के फैलाव, सामाजिक-आर्थिक विषमता, राजनीतिक जीवन की अराजकता, विद्रूपता, मूल्यहीनता, भ्रष्टाचार को लेकर भी इछ के वर्षो में भारी संख्या में उपन्यास लिखे गए हैं । (हि० सा० का इ०, सं०-डॉ० नगेंद्र, पृ० 706) आधुनिक समाज और राजनीति की सारी गंदगियों और इनकी मूल्यहीनता एवं विद्रूपता को इधर के उपन्यासों में बड़ी ईमानदारी के साथ प्रस्तुत किया गया है । स्त्री पुरुष के काम-संबंध को भी अनेक उपन्यासकारों ने कथ्य के रूप में लिया है । श्याम व्यास (एक प्यासा तालाब) कृष्णा सोबती ('सूरजमुखी अंधेरे के, मित्रों मरजानी, यारो के (यार) गोविंद (वह अपना चेहरा उतरती

धूप), भीष्म साहनी (कुंतो, नीलू, नीलिमा, नीलोफ) आदि ने काम, प्रेम और विवाह की समस्या को उठाया है ।

विभिन्न विषयों को लेकर अनेक महत्वपूर्ण उपन्यास प्रकाशित हुए हैं, कुछ महत्वपूर्ण उपन्यास इस प्रकार है लड़कियाँ, एक पत्नी के नोट्स (ममता कालिया), 'कुरु-कुरू स्वाहा (मनोहर श्याम जोशी), कलिकथा', 'पिघलेगी बर्फ' (कामतानाथ) फूल का दर्प (दिनेशनदिनी) डालमिया), 'छिन्नमस्ता' (प्रभाखेतान),' कलिकथा वाया बाईपास' (अलका सरावगी) 'अपने-अपने राम (भगवान सिंह) दीवार में एक खिड़की रहती थी । (विनोदकुमार शुक्ल) 'काशी का अस्सी' (काशीनाथ सिंह), 'झीनी झीनी बीनी चहरिया (अल्दुल बिस्मिलाह) 'सात आसमान', 'कैसी आग लगाई' (असगर बजाहत) आदि । पौराणिक घटनाओं पर आधृत नई दृष्टि से संपन्न नरेंद्र कोहली ने राम और महाभारत की कथा अनेक खण्डों में लिखी रामकथा 'दीक्षा (1975) 'अवसर' (1976) 'संघर्ष की ओर (1978) तथा युद्ध (1979) महाभारत की कथा बंधन (1988) अधिकार (1990) कर्म (1991) धर्म (1993) 'अंतराल' (1995), प्रछन्न, (1997) प्रत्क्ष (1998) तथा निर्बंध (2000) ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिंदी उपन्यास विद्या ने एक लंबी यात्रा तय की है । कथ्य , भाषा और शिल्प के स्तर पर हिंदी उपन्यास विधा इतनी संपन्न और समृद्ध है कि इसकी तुलना विश्व की किसी अन्य समृद्ध भाषा की उपन्यास विधा से की जा सकती है ।

1.3 त्यागपत्र की कथावस्तु, एवं इसका प्रतिपाद्य

त्यागपत्र (1937) जैनेंद्र का महत्वपूर्ण उपन्यास है । इसी उपन्यास से हिंदी उपन्यास विधा एक नए और विशिष्ट क्षेत्र में प्रवेश करती है । जैनेंद्र प्रेमचंद की तरह सामाजिक यथार्थ के कथाकार नहीं है । वे व्यक्तिमन के यथार्थ के कथाकार हैं । लेखक ने व्यापक सामाजिक जीवन को अपने उपन्यासों का विषय न बनाकर व्यक्मिन की शंकाओं, उलझनों और गुत्थियों का चित्रण किया है । उनके उपन्यासों की कहानी अधिकतर एक जीवन की कहानी हाती है और वे शहर की गली और कोठरी की सभ्यता में ही सिमटकर व्यक्तिपात्रों की मानसिक गहराई में प्रवेश करने की कोशिश करते हैं । (हि० सा० का इ०, सं० डॉ०- नगेंद्र, पृ० 563) इस कोशिश में उनके पात्र पहेली बन जाते हैं और पात्र उस पहेली में बुरी तरह उलझ जाते हैं । जो हो, उन्होंने हिंदी उपन्यास को असंदिग्ध रूप से नयी दिशा प्रदान की और उपन्यास को सामाजिक यथार्थ ही नहीं बल्कि मनोवैज्ञानिक यथार्थ के क्षेत्र में प्रवेश करने की राह सुझाई । इस प्रकार उन्हें हिंदी में मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की परंपरा का पुरस्कर्ता माना जा सकता है । (हि० सा० का इ०, सं० डॉ० नागेंद्र- पृ० 563)

'परख' 'सुनीता' और 'त्यागपत्र' पर ही जैनेंद्र की कीर्ति अवलंबित है क्योंकि इन्हीं तीनों उपन्यासों के साथ हिंदी उपन्यास-विधा में नई, सुगंध भरी बयार का आगमन हुआ था । फिर तो इसके बाद जैनेंद्र अपने को पुनरवृत्त करने लगे और नावीन्य उबाऊ पुरातन हो गया । मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में कथा का उतना विस्तार नहीं होता जितना कि सामाजिक यथार्थ के उपन्यासों में होता है । यही कारण है कि जैनेंद्र के उपन्यासों में कथा-सघनता के स्थान पर कथा-विरलता पाइ जाती है ।

1.3. 'त्यागपत्र' की कथा अत्यंत भीनी है । इसमें पूरी कथा एक पात्र विशेष के अवलोकनबिंदु से प्रस्तुत की गई है, जो निश्चय ही नाटकीकरण की विकसित पद्धति है । उस उपन्यास से, ऐसा कहें, जैनेंद्र के

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों ने हिंदी उपन्यास को विशिष्ट व्यक्तित्व प्रदान किया है ।

'त्यागपत्र' की मृणाल एक संभ्रांत परिवार की लड़की है । माता-पिता उसके बचपन में ही मर चुके हैं बड़ा भाई उसका अभिभवक है । उसे परिवार से प्यार मिलता है । वह नटखट है, तितली-सी यहाँ-वहाँ उड़ती फिरती है । वह स्कूल में खूब उधम मचाती है । अनजाने वह शीला के भाई को अपना हृदय थमा बैठती है । उसका प्रेम प्रसंग भाभी को ज्ञात होता है । वह मृणाल को बेंत से पीटती है । बेंत का प्रहार उसके भीतर एक कुंठा बन प्रवेश कर जाता है । उसकी हँसी, उसका खिलंदड़ापन, उसकी मस्ती हमेशा के लिए छिन जाती है । वह भीतर से टूट जाती है । उसका जीवन फैला हुआ तप्त रेगिस्तान बन जाता है । कुछ दिन बाद उसकी शादी एक अधेड़ से कर दी जाती है । उसे उसके प्रेम का यह नायाब पुरस्कार प्राप्त होता है । एक दिन बातों ही बातों में उस अधेड़ को यह पता चल जाता है कि मृणाल शीला के भाई से प्रेम करती है । मृणाल प्रणयी के प्रेमपत्र की चर्चा अपने अधेड़ पति से कर देती है । अधेड़ पति को यह सह्य नहीं होता । वह मृणाल को अपने घर से निष्कासित कर देता है । इसके बाद मृणाल कभी अभिजात समाज में नहीं लौटती रही । वह वह सत्य समाज से निर्वादित होकर असभ्य लोगों के बीच जीवन गुजारती है, क्योंकि उसे यह अनुभव होता है कि मानवता तथा कथित असम्य कहे जानेवाले लोगों के हृदयमें ही वास करती है । थोड़ी सी सहानुभूति पाकर वह कोयलेवाले के साथ चली जाती है । यह जानते हुए भी कि उसके साथ-साथ नहीं निबहेगा, वह उसे अपने को पूर्ण रूपेण समर्पित कर देती है । मृणाल के जीवन में यह लीला अहेतुक ही चलती दिखाई पड़ती है करुणा के लिए देह को समर्पित करते चलना यह शायद जैनेद्रजी के पात्रों के ही संभव हो पाता है । एक उदासी एक पीड़ा का सुख उसे निरंतर दबोचे चल जाता है और वह समाज के उपेक्षित-गर्हित जीवन को वरण करती चली जाती है और अंत में इसी पीड़ा को प्यार करती हुई एक गंदे और जड़ समाज में दम छोड़ देती है । (डॉ० रामदरश मिश्र, हिंदी उपन्यास एक अंतर्यात्रा, पृ० 82 मृणाल समाज को नहीं छोड़ सकती, उसे तोड़ने का उसका कोई इरादा भी नहीं है, वह अपने को तोड़ती है । वह कहती है-''

''मैं समाज के तोड़ना छोड़ना नहीं चाहती हूँ । समाज टूटा तो हम किसके भीतर बनेंगे यह कि किसके भीतर बिगडेंगे इसलिए इतनाही कह सकती हूँ कि समाज से अलग होकर उसकी मंलाकांक्षा में खुद ही टूटती हूँ ।'' क्या मृणाल अपने को छोड़कर समाज के क्रूर हृदय को परिवर्तित करना चाहती है । यदि ऐसा है तो यह निष्क्रिय सोच है । जान-बूझकर अपने को तोड़ने से जिस करुणा का अदिर्भाव होगा, वह समाज को किस भी रूप में प्रभावित नहीं कर सकता । प्रयत्न की विफलता से जिस करुणा और कसकपूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण होता है, वही समाज को प्रभावित कर सकता है ।

प्रमोद बुआ की मृत्यु पर आहत है । वह कहता है: घटनाएँ होती हैं, होकर चली जाती है । हम जीते हैं और जीते-जीते एक रोज मर जाते हैं । जीना किस हौसले से आरंभ करते हैं, पर उस जीवन के इस किनारे आते-आते कैसी ऊब कैसी उबताहट जी में भर जाती है । मैं इस लीला पर इस पहेलीका पर सोचता रह जाता हूँ । कुछ पार नहीं मिलता, कुछ भेद नहीं पाता । प्रमोद बुआ के जीतेजी राह पर नहीं आया पर बुआ की मृत्यु के बाद वह जजी से त्यागपत्र दे देता है । उसे दु:ख है कि प्रचलित न्याय-व्यवस्था के होते हुए समाज में वैषम्य और दरिदता को दूर नहीं किया जा सकता । समाज में कुछ लोग प्रचुरता में जीते हैं और अधिसंख्य है कि उन्हें

भरपेट भोजन तक नसीब नहीं होता है। प्रमोद को यहबात कचोटती है। प्रमोद भी बकालत में इस तरह चिपट जाता है कि उसे दीन-दुखियों विशेषकर अपनी बुआ (मृणाल) की ओर देखने की फुर्सत नहीं मिलती। वह अपने स्वार्थ की धुन में मस्त रहता है। धनियों की स्वार्थ वृति धन-लोलुप्ता हीं समाज में वैषम्य का कारण है। प्रमोद इस सत्य से परिचित होता है ओर जजी छोड़ देता है। वह कहता है औरों के लिए रहना तो शायद नए सिरे से मुझसे सिखा न जाए, अदतें पक गई है पर अपने लिए तो उतनी ही स्वल्पता से रहूँगा, जितना अनिवार्य होगा। यह वचन देता हूँ। (पृ० 87)

1.4. 'त्यागपत्र' का प्रतिपाद्य

'त्यागपत्र' का प्रतिपाद्य दार्शनिक कुहेलिका से आच्छादित है। मृणाल के चरित्र से यही प्रकाशित होता है कि 'त्यागपत्र' का प्रतिपद्य है व्यक्ति की टूटन के समाज को टूटने से बचाने को अभिव्यक्त करना। वास्तव में यह उपन्यास सामाजिक विसंगति के विरुद्ध कोई सक्रिय प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं करता, अपितु उस सामाजिक विसंगति का परिणाम होते हुए किसी चरित्र द्वारा उसे एक प्रकार से मान्यता प्रदान करना ही इस उपन्यास का केंद्रीय बिंदु है। इसी अर्थ में डॉ० बच्चन सिंह ने इस उपन्यास को 'छायावादी वेदना की गद्यात्मक विकृति माना है। मृणाल का सामाजिक विसंगतियों के प्रति कोई विद्रोह भाव व्यक्त नहीं होता। वह उन्हें एक विशेष प्रकार की यातना लिए प्यार करती चलती है। इस अर्थ में यह उपन्यास सामाजिक विसंगति को प्रस्तुत करनेवाला उपन्यास न होकर मृणाल के चरित्र की विसंगति को ही प्रस्तुत करलेवाला उपन्यास बन जाता है। मृणालने जो यातनाएँ भोगी है। वे इसके जीवन-परिवेश से उत्पन्न न होकर उसके द्वारा स्वयं वारण किए जाने के रूप में आती हैं। आखिर मृणाल समाज की विसंगतियों का खुलकर विरोध क्यों नहीं करती ? वह जिस समाज को टूटने से बचाना चाहती है ? अहं का विसर्जन आत्मपीडन से होता है और आत्मपीड़न से सत्य का दर्शन होता है। यदि यहाँ गाँधीवादी दर्शन है तो इस दर्शन का सही उपयोग इस उपन्यास में नहीं हुआ है। गाँधीवादीदर्शन कोई निष्क्रिय दर्शन नहीं है, यह दर्शन निरर्थक आत्मपीड़न को महत्व नहीं देता। इस दर्शन में जिस अहिंसा, आत्मविसर्जन और आत्मपीड़न की महत्ता है, वह समाज को बदलते ही क्षमता से परिपूर्ण है। यह पलायनवादी दर्शन नहीं है। यहि जैनेंद्र को गाँधीवादी दर्शन से प्रभावित माना जाता है तो इस उपन्यास में गाँधीवादी दर्शन के विपरीत घटित हुआ है। गाँधीवादी दर्शन में नियति के समक्ष टूटने की कायरता नहीं है।

जैनेंद्र की मृणाल आत्मपीड़न से गुजरती है। वह समाज को तोड़ने-फोड़ने के स्थान पर स्वयं को तोड़ना पसंद करती है। प्रमोद से वह कहती है," मैं समाज को तोड़ना-फोड़ना नहीं चाहती हूँ। समाज टूटा कि फिर हम किसके भीतर बनेंगे ? या कि किसके भीतर अलग होकर उसकी मंगलाकांक्षा में खुद ही टूटती रहूँ। (पृ० 64) प्रश्न उठता है कि क्या समाज की ऐसी ही मंगलाकांक्षा 'त्यागपत्र' की प्रतिपाद्य है ? यदि उसे ही उपन्यास का प्रतिपाद्य मान लिया जाए, तो यह कहने में अपत्ती नहीं होनी चाहिए कि जैनेंद्र ऐसा प्रतिपाद्य दार्शनिक भले हो सकता है सामाजिक अर्थवत्ता से उसका कोई संबंध नहीं होगा।

मृणाल का नारी, समाज, व्यक्ति, विवाह आदि के संबंध में जो दार्शनिक चिंतन है वह निष्क्रिय, सूफियाना, नियतिवादी और पलायनवादी है। समाज की रक्षा उसकी जड़ता को तोड़ने से ही हो सकती है, ओर उसकी गति पर चलने की स्वतंत्रता देकर नहीं। मृणाल के कथन में दार्शनिक उत्कर्षता है, वह परंपरा की जड़ता में

जीती है और उस जड़ता को दार्शनिकत: से आवृत्त कर उसे महिमान्वित करती है। वह मरने को अधर्म मानती है, पर वह अपने लिए आत्माहत्या के अनेक अवसर तलाशती है। यदि 'त्यागपत्र' में मृणाल के चरित्र को ही प्रतिपाद्य के रूप में प्रस्तुत हुआ मान लिया जाए, तो हमारे भीतर यह प्रश्न उठना अत्यंत सहज है कि मृणाल के चरित्र में आधुनिक नारी की कौन सारी विशेषताएँ अनुसपुत हुई हैं जिनसे नारी जीवन को उस नारी जीवन को जिसे बराबर शोषणचक्र में दमन का दंड मिला है कौन-सी नई दिशा प्राप्त हो सकेगी। डॉ० रामदरश मिश्र का निम्नोक्त कथन अत्यंत सार्थक है "प्रश्न है कि जो समाज है और जिसमें हम हैं और जिसके अनेक अशोभन-अमानवीय संबंधों के दबाव में हम पिस रहे हैं उसे बदलने की आवश्यकता नहीं है ? क्या हमारे टूटने से ही उसकी रक्षा हो जाएगी हमारे जैसे अनेक लोग टूटते जाएँगे और हमारे मध्यम से समाज टूटता जाएगा। (हिंदी उपन्यास: एक अंतर्यात्रा, पृ० 83)

इस उपन्यास का प्रतिपाद्य सामाजिक वैषम्य के जड़त्व का प्रतिपादन नहीं है, अपितु उसमें हठी एवं नियति को मानने वाली एक नारी के जानबूझकर पिसने का चित्रण है जिससे सामाजिक स्तर पर कोई ग्रहणीय अर्थ संभाव्य नहीं होता एक दार्शनिक चिंतन ही अपनी निष्क्रियता में यहाँ-से-वहाँ तक फैला हुआ है। समाज में कहीं कुछ गड़-बड़ है इसी का परिणाम मृणाल का आत्मबलिदान है। यह बलिदान उपन्यास में अद्योपांत व्याप्त है और समाज की वर्तमान मानवीय व्यवस्था के दबाब में पिसते हुए एक व्यक्ति (विशेषतया नारी के करुण परिणति का बड़ा मार्मिक चित्र उपस्थित करता है, किंतु जब लेखक या उसकी ओर से मृणाल एक दार्शनिक भंगिका से इस नियतिवाद का समर्थन करने लगती है, पुरुष के प्रति अपने पातिव्रत धर्म का एकांत समर्पण करने लगती है, पीड़ा और यातना को प्यार करने लगती है तब लेखक या मृणाल के चिंतन में कहीं कुछ गड़बड़ी दिखाइ पड़ने लगती है। (डॉ० रामदरश मिश्र, हि० उ० एक अंतर्यात्रा पृ० 845

प्रेम करना गुनाह है; प्रेम करने वाली किस तरह परिवार की आँखों में किरकिरी पैदा करने लगती है और किस तरह परिवार वाले बदनामी के डर से उसका विवाह शीघ्र ही अविवेकपूर्ण ढंग से कर देते हैं जिसका दुष्परिणाम लड़की को भागना पड़ता है-यह इस उपन्यास का प्रतिपाद्य हो सकता था। जैसा कि अनेक कथाकारों ने इसे कथ्य के रूप में लिया भी है। पर जैनेंद्र की ओर से इसे कथ्य के रूप में प्रस्तुत करने की कोई संभावना नहीं दीखती है। इसका स्पष्ट कारण है मृणाल का नियतिवादी होना, उसका निष्क्रिय एवं प्रतिसेध हीन होना। मृणाल जिन परिस्थितियों में यातनाएँ झेल रही है, वे सारी उसकी अपनी हैं, वह उनमें जानबूझकर फँसती चली जाती है। वह अवसाद और पीड़ा में सुख की तलाश कर लेती है। अत: उपन्यास का प्रतिपाद्य सामाजिक यथार्थ न होकर व्यक्ति मन की कोई कुंठा है। मृणाल की कुंठा को कनोवैज्ञानिक स्तर पर अभिव्यक्ति मिलती तब भी एक बात होती, पर यहाँ तो मनोविज्ञान के साथ दर्शन की कुहेलिका की रचना की गई है। लेखक का दर्शन मृणाल के साथ ज्यादती करता है, वह मृणाल के व्यक्तित्व को एकांकी और अटपटा बना देता है; अटपटा अर्थ अवहेलना में मृणाल के चरित्र में पाठकीय संवदेना की नितांत हुई है। तब त्यागपत्र का प्रतिपाद्य है एक ऐसी नारी की कथा प्रस्तुत करना जिसके जीवन में यातना और विवाह का जन्म सामाजिक यथार्थ के क्रोड से होता है, पर उनका फैलाव स्वयं कहानी की नायिका के द्वारा चुनी गई परिस्थितियों के द्वारा। पति से परित्यक्त होने पर मृणाल होने और न होने के बीच ,परिस्थितिगत यथार्थ और लेखक की दृष्टिगत संभावना के बीच चलती रहती है। इस प्रकार वह जो जीवन बिताती है, उसका जिम्मेदार

सर्वत्र समाज नहीं होता, वह होती है । वह अपनी नियति स्वयं निर्मित कर लेती है जिसे ढोती हुई अंत तक चलती रहती है और अंत में एक गंदे और जड़ समाज में दम तोड़ देते हैं । दर्शन और मनोविज्ञान के तालमेल से निर्मित त्यागपत्र की कथा सामन्य चरित्र ही विश्वसनीय कथा न होकर एक विशिष्ट चरित्र की प्रायः गढ़ी हुई कथा है जो अपनी बुनावट विशिष्ट सरलता और भाषिक नएपन तथा तत्त्वगठन के नावीन्य के कारण हिंदी उपन्यास के क्षेत्र में मील का पत्थर है ।

105. सारांश

प्रस्तुत पाठ में 'त्यागपत्र' उपन्यास की कथावस्तु एवं प्रतिपाद्य पर प्रकाश डालने के पूर्व हिंदी उपन्यास के विकास पर व्यापक दृष्टि डाली गई है ताकि इस उपन्यास को पूर्णता में समझाने के लिए हमें तुलनात्मक सुविधा प्राप्त हो सके ।

1.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. पूर्व प्रेमचंद हिंदी उपन्यासों पर टिप्पणी लिखें ।
2. प्रेमचंद युग के उपन्यासों की प्रवृत्ति पर प्रकाश डालें ।
3. हिंदी उपन्यास साहित्य में प्रेमचंद का स्थान निरुपित करें ।
4. प्रेमचंद युग के दो प्रमुख मनोवैज्ञानिक उपन्यासों पर प्रकाश डालें ।
5. हिंदी उपन्यास-साहित्य में जैनेंद्र के अवदान की चर्चा करें ।
6. 'त्यागपत्र' की कथावस्तु संक्षेप में लिखें ।
7. 'त्यागपत्र' के प्रतिपाद्य पर अपना अभिमत दें ।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. सही उत्तर का संकेताक्षर लिखें ।

'गोदान' किसकी रचना है ?

(क) गुलेरी (ख) प्रसाद

(ग) प्रेमचंद (घ) जैनेंद्र उत्तर-(ग)

2. 'चंद्रकांता' के उपान्यासकार हैं-

(क) प्रेमचंद (ख) देवकीनंदन खत्री

(ग) जैनेंद्र (घ) प्रसाद उत्तर-(ख)

3. सुनीता के रचनाकार हैं:

(क) अज्ञेय (ख) यशपाल

(ग) इलाचंद्र जोशी (घ) जैनेंद्र उत्तर-(घ)

4. 'त्यागपत्र' की नयिका का नाम क्या है ?

(क) मृणाल (ख) ज्योतिर्मयी

(ग) किटटू (घ) सुनीता उत्तर-(क)

5. 'त्यागपत्र' उपन्यास में कौन जजी छोड़ दता है ?

(क) दिनेश (ख) प्रमोद

(ग) हिमांशु (घ) अन्नत सेन उत्तर-(ख)

1.7. संदर्भ ग्रंथ

1. हिंदी साहित्य का इतिहास आचार्य रामचंद्र शुक्ला
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास सं० डॉ० नागेंद्र
3. हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास डॉ० बच्चन सिंह
4. हिंदी उपन्यास एक अंतयात्रा डॉ० रामपरश मिश्र.

उपन्यासकला की दृष्टि से 'त्यागपत्र' का विवेचन

2.1. उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ का उद्देश्य है छात्रों को इस पाठ में उपन्यासकला की दृष्टि से 'त्यागपत्र' से परिचित कराना इस पाठ में उपन्यास कला की दृष्टि से 'त्यागपत्र' की विशद और विस्तृत समीक्षा की जाएगी। 'त्यागपत्र' की समीक्षा करने के पूर्व उपन्यास के स्वरूप और सार्थकता पर विचार करना अपेक्षित है।

2.2. विषय-प्रवेश

'उपन्यास' शब्द उपसमीप तथा न्यास-थाती के योग से बना है, के निकट रखी हुई वस्तु, अर्थात् वह वस्तु या कृति जिसको पढ़कर ऐसा लगे कि यह हमारी ही है इसमें हामरे ही जीवन का प्रतिबंब है इससे हमारी ही कथा हमारी ही भाषा में कही गई है। (हिंदी साहित्य कोश, भाग 1 पृ० 21 डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा)

न्यू इंगलिश डिक्शनरी में उपन्यास की परिभाषा इस प्रकार है बृहत् आकार गद्य आख्यान या वृत्तांत जिसके अन्तर्गत वास्तविक जीवन के प्रतिनिधित्व का दावा करने वाले पात्रों और कार्यों को कथानक में चित्रित किया जाता है। (उद्घृत हि० सा० कोश, पृ० 121)

उपान्यास आज के साहित्य की सबसे अधिक प्रिय और सशक्त विधा है। कारण यह है कि उपन्यास में मनोरंजन का तत्व तो अधिक रहता ही है, साथ-ही-साथ जीवन को उसकी बहुमुखी छवि के साथ व्यक्त करने की शक्ति और अवकाश होता है।" (डॉ० रामदरश मिश्र, हि० उ० एक अंतर्यात्रा, पृ० 15

वास्तव में उपन्यास पूँजीवादी समाज की बहुमूल्य देन है। पूँजीवादी सभ्यता में जीवन की दशा और दिशा में आमूलचूल परिवर्तन हुआ। इसमें यथार्थ के नए स्तर, चिंतन के नए आयाम, नए प्रश्न, नए जीवन मूल्य उभरे पुरात्तन के विरोध में स्वीकार ने जीवन ही व्याख्या मे नए हद दिए। बौद्धिक एवं नैतिकवादी दृष्टि ने परंपरा को अधीकार कर जिस नई परंपरा का आरंभ किया उसे पुरातन साहित्य-शिल्प में अभिव्यक्त करना सर्वथा असंभव था। अत: उसे अभव्यक्त करने के लिए एक नई कथा-परंपरा का सूत्रपात हुआ जिसे उपन्यास के नाम से जाना गया। 'उपन्यास' शब्द भले ही भारतीय परंपरा में प्राप्त होता हो, पर आज जिस कथा-साहित्य के लिए इस शब्द का प्रयोग होता है, इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग पहले कभी नहीं हुआ। वास्तविकता यह है कि हिंदी में 'उपन्यास' शब्द जिस कथा-साहित्य के लिए प्रचलित है शब्द यह अँगरेजी श्छवअमसश का हिंदी पर्याय है।

उपन्यास आधुनिक युग के महाकाव्य माने जाते हैं मेरी दृष्टि में उपन्यास महाकाव्य से भी ज्यादा महत्वपूर्ण व्यापक, क्षमताशील, ऊर्जावान और संभावनाओं से परिपूर्ण हैं। उपन्यास यथार्थ के विश्वास के साथ हमारे मन पर (पाठकों के मनपर) अमित प्रभाव डालता है। आज के जीवन की सारी जटिलताएँ, यथार्थ के सूक्ष्म और

विविध आयाम पात्रों के विविध पार्श्व, मन की गुफाओं के अँधेरे में छिपे रहस्य जीवन के समान्य-से दीखने वाले व्यापारों की असामान्यताएँ, संवादों के विद्या अगणित लहजे, परिवेश की नई-नई अभिव्यक्ति शैलियाँ के सबके-सब उपन्यास में अट सकती हैं । इसीलिए उपन्यास विद्या जहाँ विस्तृत है वहीं गंभीर भी उपन्यास अपनी विशिष्ट क्षमता के कारण निश्चय हो आधुनिक काल की शक्तिशाली एवं जनप्रिय सहित्यिक विद्या है ।

2.2.1 उपन्यास के तत्त्व

ऐसे तो संपूर्ण कथासाहित्य के मुख्य तत्व छह हैं- कथावस्तु, पात्र, संवाद, देशकाल (वातावरण), शैली और उद्देश्य पर उपन्यास में इनका विशेष महत्व है । कुतूहल और संघर्ष या द्वंद्व (Conflict) औपन्यासिक रचना कौशल के अंग हैं । कथावस्तु, पात्र और उद्देश्य महत्वपूर्ण तत्व हैं । देशकाल या वातावरण कथावस्तु के अंतर्गत ही लिया जाना चाहिए । कथावस्तु को ग्रह्य ओर विश्वसनीय बनाने के लिए ही उसकी योजना की जाती है । कथावस्तु द्वारा प्राप्त परिणाम ही उद्देश्य के रूप में जाना जाता है । उद्देश्य को ही प्रतिपाद्य भी कहा जाता है । संवाद सीधे पात्रों से जुड़ा है और शैली विशिष्ट रचनात्मक भगिमा है जिसके द्वारा कथा का विशेष प्रतिपाद्य विश्वसनीय ढंग से अभिव्यक्त होता है ।

2.2.1.1. उपन्यास की कहानी जिन उपकरणों से मिलकर तैयार होती है, उन उपकरणों को कथावस्तु कहते हैं । प्रमुख उपकरण हैं: The mr plot कथासूत्र मुख्य कथानक प्रासंगिक कथानक या अन्तर्कथनक उपकथानक आदि (Episode) उपन्यास जिस मुख्य विचार या दृष्टि कोण पर आधारित होता है, उसे थीम या कथासूत्र कहते हैं । प्रारंभ से अंत तक चलनेवाली पात्रों नायक-नयिका से संबद्ध होता है । मुख्य कथानक को पुष्ट करनेवाले प्रासंगिक कथानक होते हैं । प्रासंगिक कथाओं को संचारीभाव के रूप में समझा जा सकता है । जिस तरह संचारीभाव स्थायिभाव के पुष्ट करने के लिए होते हैं और उन्हें पुष्टकर समाप्त हो जाते हैं, उसी तरह प्रासंगिक कथाएँ मुख्य कथा को पुष्ट करती हैं । उपकथानाक मुख्य कथानक के साथ बहुत दूर तक चलता है और उसे स्पष्टता को प्रदान करता है । उपकथानक के द्वारा कथासूत्र (उपन्यासकार वैचारिक या दार्शनिक आधार या आधारभूत कार्य या विषय विशेष स्पष्ट दोहा है । उपन्यास में कथावस्तु के संगठन और विन्यास पर उपन्यासकार की नजर होती है । घटना-प्रधान उपन्यासों में विशेष रूप से) चरित्र चित्रण उपन्यास का अत्यंत महत्वपूर्ण अंग है । उपन्यास के पात्रों के क्रियाकलाप से ही कथावस्तु का निर्माण अथानक में भी उतना ही आकर्षण लाया जा सकेगा (हि० साहित्य कोश, भाग 1 पृ० 124)

२.२.१.२ उपन्यासकार को द्वारा संवाद या कथोपकथन द्वारा चरित्र चित्रण में अत्यधिक सहयोग मिलता है । संवाद से चरित्र के अनेक गुण सामने आते हैं । संवाद पात्रों को सजीव बना देते हैं और कथानक में नाटकीयता का समावेश करके उसके प्रभाव को तीव्र कर देते हैं ।'' (सहित्यकोश, भाग 1 पृ० 124) पात्रों के कार्य उन्हें जितना खोलते हैं, उससे ज्यादा उनके संवाद उन्हें खोलते हैं । पात्रों के सहज संवाद उनके व्यक्तितत को विशद रूप प्रस्तुत करते हैं, क्योंकि सहज संवाद पात्रों की मानसिक भूमि और चिंतन प्रक्रिया के प्रमाण होते हैं । अत: उपन्यासकार को पात्रों के संवाद पर विशेष ध्यान देना पड़ता है । जहाँ, संवाद पात्रों के व्यक्तित्व के उद्घाटक होते हैं, वहीं ये कथावस्तु को अपेक्षित विकास भी प्रदान करते हैं ।

2.2.1.3 संघर्ष या द्वंद्व

उपन्यासकार द्वंद्व को दो स्तरों पर प्रस्तुत करता है-भौतिक स्तर पर और मानसिक स्तर पर । भौतिक स्तर के संघर्ष में दो पात्रों का अपने अपने विचार की स्थापना के लिए संघर्ष होता है और मानसिक या अंतरिक स्तर पर एक ही परत के मन के दो आदर्शों में संघर्ष या द्वंद्व होता है । यह प्राय: रूप और अलप के बीच का द्वंद्व होता है, करें या न करें के बीच का द्वंद्व होता है । मानसिक द्वंद्व का चित्रित करनेवाले उपन्यास तत्वों के आधार पर ही आगे के पृष्ठों में जैनें– रचित उपन्यास 'त्यागपत्र' की समीक्षा प्रस्तुत की जाएगी ।

2.3 उपन्यास कला की दृष्टि से 'त्यागपत्र'

2.3.1 कथावस्तु

'त्यागपत्र' अस्सी पृष्ठों का लघु उपन्यास है । एक आधिकारिक कथा (प्रधान कथानक) प्रारंभ से अंत तक चलती है । जितना मृणाल प्रमोद को स्नेह देती है, प्रमोद भी मृणाल से उतना ही प्रेम करता है । प्रमोद और मृणाल की कथा प्रधान कथा से अभेद भाव से जुड़ी है । मृणाल की जीवनयात्रा के प्रत्येक मोड़ से प्रमोद परिचित है, वह लाख चहता है कि मृणाल अपनी यात्रा की दिग्भ्रांतता से मुक्त होकर उसके साथ रहे पर मृणाल अपनी बनाई विवशता में इस तरह उलझती है कि वह वहाँ से मुक्त होकर अपने भैया के परिवार तथा अभिजात कुल की प्रतिष्ठा का उल्लंघन करना नहीं चाहती । मृणाल एक असहज जीवन सिद्धांत के प्रति उस तरह समपिंत है कि उसका चरित्र विवेकहीन कठवादिता का आदर्श बन जाता है । वह अपनी जीवनयात्रा एक भटकाव में समाप्त करती है । वह दुर्गंधपूर्ण अँधेरी गलियों में अवसादपूर्ण अश्रुविंदुओं का संबल लिए भटकती रहती है और अंत में अपनी करुण इहलीला को समाप्त करती है । उसकी जीवनयात्रा उसकी है, उसे उसने अपने लिए चुना है, उसके लिए वह किसी को दोष नहीं देती । इस अंधकारपूर्ण यात्रा में उसे कहीं से सहानुभूति और प्यार के दो शब्द मिल जाते हैं, उसके मन को सुकून मिल जाता है ।

माता-पिता के मर जाने के बाद मृणाल अपने बड़े भाई के अभिभावकल में सुखमय जीवन व्यतीत करती है । प्रमोद उसका भतीजा है । बुआ के अनिंद्य सौंदर्य और अथाह स्नेह में उसका अबोध मन गाते लगाता है । वह बुआ के प्रति उत्तरदायित्पूर्ण ईमानदारी से समर्पित होता है । पर प्रमोद की वाल्यावस्था की उत्तरदायित्पूर्ण ईमानदारी भावना के स्तर पर जितनी प्रबल है, सक्रियता के स्तर पर इतनी प्रबल नहीं है । यही निष्क्रिय भावुक समर्पण प्रमोद की प्रौढ़वस्था तक वर्तमान रहता है और इसी वजह से वह अपनी जजीसे त्यागपत्र देकर अपनी बुआ के प्रति अपनी निष्क्रिय भावुकता के लिए पश्चात्ताप करता है ।

मृणाल अपने भैया के साथ रहकर, प्रमोद को अपना दु:ख-सुख का साथी बनाकर बहुत खुश है । वह अपनी बहनेली शीला के भाई से प्रेम करती है, इस 'दुष्कर्म के लिए वह प्रमोद की माँ से पिटती है । वह 'प्रेम' के कारण पुरस्कृत होने के बजाए प्रताड़ित होती है । उसकी हँसी खत्म हो जाती है ।

लोक-लज्जा के भय से जल्दी-जल्दी तत्परता के साथ उसकी शादी एक अधेड़ पुरुष से कर दी जाती है । मृणाल का जीवन उदास हँसी में व्यतीत होता है । वह सुखी रहने की कोशिश करती है । इसी बीच शीला के भाई का पत्र उसके पास आता है ।" मैं अब सिविल सर्जन हूँ शादी नहीं हुई है । न करूँगा । तुम्हारा विवाह

हो गया है, तुम सुखी रहो । मेरे लायक कोई सेवा हो तो लिख सकती हो ।'' मृणाल अपने निष्पाप और निस्सहाय होने का प्रमाण प्रस्तुत करने के लिए अपने पूर्व प्रेमी के पत्र का जिक्र अपने पति से करती है । उसे अपने फतिव्रत्य में विश्वास है । उसमें आधुनिक बोध है ओर पुरातन के समक्ष आधुनिक दृष्टि को प्रस्तुत करने का साहस है । मृणाल का पति मृणाल के इस आचरण से रुष्ट हो जाता है । मुझसे कहने की कोई जरूरत नहीं है । यह था तो मुझसे शादी क्यों की ?'' वह आए दिन मृणाल को गालियाँ देने लगता है ओर बात-बात में बेंत से पिटाई करने लगता है । मृणाल उसे बर्दाश्त करती है । मृणल मैके नहीं जा सकती क्योंकि उसकी पीड़ा भैया-भाभी की समझ से दूर है । वह मैके से कट गई है तो फिर मैके नहीं जा सकती । वह अपने पतिदेव से कहती है वहाँ से मैं कहकर आ गई हूँ । आपकी खुशी से तो वहाँ जा सकती हूँ, आपकी नाराजगी में वहाँ जाना मेरा धर्म नहीं है ।'' (पृ० 57) मृणाल का पति उसे शहर से दूर एक कोठरी में लाकर छोड़ देता है । मृणाल की जीवनयात्रा का यह दुर्भाग्यपूर्ण दूसरा मोड़ है ।

वहाँ कोयले के एक छोटे व्यापारी से मृणाल की (उसकी) भेंट होती है । कोयले का व्यापारी मृणाल के अपरूप सौंदर्य पर रिझकर अपने भरे-पूरे परिवार का मोह त्याग देता है । वह मृणाल की मदद करता है और मृणाल भी उसकी ओर खिंच जाती है । वह मौत से मुँह मोड़कर जीने के संकल्प की ओर उन्मुख होती है । वह उस पुरुष की सेवा में अपने जीवन का अर्थ ढूँढ़ने लगती है । ''मेरा अस्तित्व मेरे लिए नहीं है । इस समय तो वेशक मैं उस पुरुष की सेवा के लिए हूँ ।'' (पृ० 20)

मृणाल और कोयले के व्यापारी दोनों कहीं दूर भाग जाते हैं । मृणाल का कोयले के व्यापारी की ओर खिंचना प्रेम के अधिकार के कारण न होकर एक दायित्व बोध के कारण है । मृणाल गर्भवती होती है । मृणाल उसे सब कुछ अपना सौंप देती है । वह अपने साथ एक छल करती है । उस कोयले के व्यापवारी की सेवा में पातिव्रत्य धर्म का अहसास उसके जीवन की विडंबना है । यह जानती हुई भी कि कोयले का वह व्यापारी मोहभंग के पश्चात उसे छोड़ देगा, वह अपने को एक भुलावे रखती है । ऐसा लगता है कि वह किसी मनोवैज्ञानिक ग्रंथि से पीड़ित है । कामाधिक्य से काम से विरक्ति का सिद्धांत शायद मृणाल को अपने विश्वास में लेता है और उसी वजह से वह कोयले के व्यापारी के साथ भाग खड़ी होती है । ''जानती थी कि इसी अवश अनुरक्ति में से एक दिन प्रबल विरक्ति का भाव फूटेगा। जानती थी इसीलिए मैं उसे साथ ले आई ।''(पृ० 60) मृणाल के समर्पण में बौद्धिक दृढ़ता है यह उसके चरित्र को उत्कर्ष पर खड़ा करती है तो उसके चरित्र को अविश्वसनीय भी बना देती है ।'' मुझे वह नहीं झेल सकता । मेरी कोशिश है कि वह मुझसे उकता जाए । मैं जानती हूँ । पेट मे बालक है, लेकिन ऐसी अवस्था में स्वार्थ की बात सोचना ठीक नहीं । मैं उसे उसके परिवार में लौटकर ही मानूँगी '' (पृ० 60) कोयले के व्यापारी को यह पता चलता है कि मृणाल बदजात, बदकार बजारू औरत है । वह कभी 'सरबस' (सर्वस्व) लगनेवाली मृणाल को पीट-पाटकर अपने परिवार की ओर रूख करता है । मृणाल की जीवनयात्रा की यह तीसरा मोड़ है । अस्पताल में मृणाल के एक लड़की होती है जो रोग और भूख से दस महीने के बाद मर जाती है । प्रमोद की शादी ठीक होती है । प्रमोद लड़की देखने उसके घर जाता है । लड़कीवाले के यहाँ मृणाल छोटे-छोटे बच्चों को पढ़ाती है । प्रमोद मृणाल से मिलता है । प्रमोद बुआ के प्रेम में अपने को रोक नहीं पाता, वह लड़कीवालों को बुआ और अपने बीच के संबंध को बता देता है । प्रमोद की शादी कट जाती है ।

नगर की सड़ांध-भरी गली में, जहाँ अधेड़ अवस्था की वेश्याएँ बेकार मजदूर, पेशेवर भिखमंगे, कानून की आँख और चंगुल से बचकर छिपे-उधड़े काम करनेवाले उचक्के रहते हैं, मृणाल बीमार है । प्रमोद उसे अपने घर लाना चहता है पर वह प्रमोद के साथ नहीं आती । वह कहती है, "प्रमोद, तुमने महाभारत तो पढ़ा है युधिष्ठिर जी स्वर्ग गए तो कुत्ते को नहीं छोड़ गए थे, यह बता, तेरा घर कितना बड़ा है-इन सबको ले चलेगा ? ये कुत्ते नहीं हैं, ओर उनका मुझ पर बड़ा उपकार है । (पृ० 34)

मृणाल अपने हठ, स्वाभिमान औदार्य दुर्भाग्य, अपनी स्वतंत्रता, अपनी विशिष्ट मानसिक ग्रंथि प्रतिदान प्रवृत्ति और द्वंद्वग्रस्तता के कारण विस्तीर्ण समुद्र रूपी अँधेरी और बिजबिजाती गाली में दम तोड़कर समाज के समक्ष एक प्रश्न छोड़ती हुई बहुत दूर चली गई ।

'त्यागपत्र' में मृणाल की कथा प्रधान है, इसके साथ प्रमोद की कथा समानांतर रूप से शुरु से अंत तक चलती रहती है । 'त्यागपत्र' शीर्षक की सार्थकता प्रमोद की कथा की साथ जुड़ी है । मृणाल और प्रमोद की कथा एक ही कथा के दो पहलू हैं और ये दोनों अन्योन्याश्रित भाव से जुड़े हुए हैं । इन दोनों की कथाएँ परस्पर पूरक हैं । मृणाल की कथा में ही प्रमोद की कथा अन्तर्भावित है । प्रमोद की कथा मृणाल की कथा के अर्थ खोजती चलरही है, जगह-जगह ठहर कर मृणाल की कथा की व्याख्या भी प्रस्तुत करती है । प्रमोद मृणाल की जीवनयात्रा का साक्षी है अत: उसकी कथा साक्ष्य प्रस्तुति में वर्णनात्मक है, चित्रात्मक नहीं । प्रासंगिक कथा के रूप में प्रमोद के फूफा (मृणाल का पति) की एवं कोयले के व्यापारी की कथा आती है । कथावस्तु व्यवस्थित प्रौढ़ सोद्देश्य, संक्षिप्त एवं नाटकीयता से परिपूर्ण है । जैनेंद्र को कथावस्तु के स्तर पर काफी सफलता प्राप्त हुई है ।

2.3.2. पात्र:

'त्यागपत्र' में दो प्रधान पात्र हैं मृणाल और प्रमोद । मृणाल समाज की सोच और बहुत कुछ अपनी स्वतंत्र सोच के कारण अपने को जानबूझकर अकेलाकर विपत्तियों में डाल देती है । प्रमोद अपनी बुआ मृणाल से बचपन से जुड़ा है । वह अपनी बुआ को सुख देखना चाहता है पर इसके लिए वह बहुत कुछ नहीं कर पाता । प्रमोद मृणाल की कथा का वाचक है । मृणाल की कथा में प्रमोद की कथा भी हस्तक्षेप करती है । मृणाल उपन्यास की नायिका है, क्योंकि वह सामाजिक संरचना और अपनी कमजोरी, या यों कहें अपने निरर्थक अहं की पुष्टि तथा अपने कुंठित जीवन-दर्शन के कारण विभिन्न कष्टों को झेलती है । प्रमोद अपनी सार्थकता के कारण बुआ के प्रति अपना संपूर्ण सात्विक एंव निस्पृह समर्पण प्रदर्शित नहीं कर पाता । वह सामान्य होता है तो मृणाल बुआके प्रेम के प्रतिघन से अपने को वंचित नहीं करता । प्रमोद धन और व्यर्थ की प्रतिष्ठा संचित करता है और अपनी आत्मा की ज्योति को कुंठित कर लेता है । मृणाल की मृत्यु के बाद प्रमोद पश्चात्ताप की अग्नि में जलने लगता है । ("आज महाश्चर्य और महासंताप का विषय मेरे लिए यह है किस अमानुषिकता के साथ सत्रह वर्ष में बुआ को बिना देखें काट गया ? वह बुआ, जिन्होंने बिना लिए दिया । जिन्होंने कुछ किया, मुझे प्रेम ही किया । जिनकी याद मेरे भीतर अब अंगार-सी जलती है । जिनका जीवन कुछ हो, ऊपर उठती लौ की भाँति जलता रहा । धुआँ उठा तो उठा, पर लौ प्रकाशित रही । बुआ को एक तरफ डालकर किस भाँति अपनी प्रतारणा करता रह गया (पृ0 86-87) प्रमोद करी अपनी प्रतारणा खुद करना अत्यंत महत्वपूर्ण है । मृणाल की

तरह प्रमोद भी वेदना को झेलता है । इस तरह प्रमोद भी इस उपन्यास का मृणाल की तरह ही एक चरित है, वह भी झेलता है । प्रमोद जजी छोड़ देता है । वह जजी से अपना त्यापत्र दाखिल कर देता है ।

मृणाल और प्रमोद के अतिरिक्त जैनेंद्र ने इस लघु उपन्यास में प्रमोद के फूफा (मृणाल के पति) और कायेले के व्यापारी के रूप में महत्वपूर्ण पात्रों की सृष्टि की है । उनके पात्रत्व के आधार पर मृणाल की जीवन-यात्रा के दो महत्वपूर्ण पड़ाव मृणाल को अंतहीन दुर्भाग्य की ओर ले जाने के प्रेरक हैं । मृणाल का पति अधेड़ है । मृणाल जैसी सुंदरी को पाकर वह अपने को भाग्यवान समझता है । वह मृणाल के मरने के चिंता भी करता है । वह उसके भीतर का पशु उस समय खुलकर सामने आ जाती है जब उसे पता चलता है कि वह (मृणाल) एक पुरुष से प्रेम करती है । अतिविश्वास, पति प्रति अपना उत्तरदायित्व, पत्नी का धर्म, आधुनिक जीवन प्रणाली में बौद्धिकता का महत्व एवं अपनी निष्पाप प्रवृत्ति के आग्रह पर मृणाल एक दिन अपने प्रेमी के दोनों पत्रों की चर्चा कर देती है । "ब्याह के बाद मैंने बहुत सोचा, बहुत सोचा । सोचकर अंत में सही पाया कि मैं छल नहीं कर सकती, छल पाप है । हुआ सो हुआ । ब्याहता को पतिव्रता होना चाहिए । सच्ची बनकर ही समर्पित हुआ जा सकता है ।" (पृ० 56) पति मृणाल को भद्दी-भद्दी गालियाँ देता है, बेंत से पीटता है और अपने घर से निकाल देता है । व्यक्ति की अनुदारता, नासमझी, विवेकहीनता, पुरातन संकीर्ण मानसिकता मृणाल को अंधेरी दिशाओं की ओर धकेल देती है ।

कोयले के व्यापारी के प्रति मृणाल (सहानुभूति पाकर) खिंचती है और अपना सब कुछ दे डालती है । कोयले का व्यापारी मृणाल की सुंदरता पर इस कदर रिझा है कि वह अपना भरा-पूरा परिवार भूल जाता है । पर एक दिन उसे यह बोध होता है कि मृणाल उसकी सर्वस्व नहीं है, वह उसकी प्राणप्रिया नहीं है । वह मृणाल को बदजात, बदकार और बजारू औरत समझकर एक दिन छोड़ देता है और अपने घर लौट जाता है । वह मृणाल को अपनी वासना पूर्ति की साधन बनाता है और जब उसकी वासना तृप्त हो जाती है तब मृणाल की कोख में अपनी वासना का चिह्न छोड़कर वह उसे छोड़ दता है । कोयले का व्यापारी पुरुष वर्ग का प्रतिनिधि है जो किसी सुंदर स्त्री पर मुग्ध होकर अपनी सहानुभूति के शस्त्र से उसे ठगता है और अपनी 'भूख' शांत होने पर उसे दूध की मक्खी की तरह अपनी जिन्दगी से निकाल देता है ।

'मृणाल का पिता जड़ सामाजिक मूल्यों में जीता हुआ एक लाचार पिता है जो अपनी पत्नी के आदेशों पर चलता है, उसके अपना कोई विवेक नहीं । मृणाल एक पुरुष से प्रेम करती है, उस बात का पता चलने पर उसे अपने कुल के कलंकित होने की आशंका होती है और वह अपनी पत्नी के आदेश पर जल्दी बाजी में मृणाल की शादी एक अधेड़ पुरुष से कर देता है । मृणाल के पति के आदेश के बिना मायके आने पर वह उसे समझाते हुए कहता है" 'मिनी, देखो ऐसी गलती मत करना । वह आदमी भले हैं । इससे बात बन भी गई नहीं तो बेटा ऐसा किया करते हैं ? थोड़ी बहुत रगड़-झगड़ होती ही है । पर पति के घर के अलावा स्त्री को और क्या आसरा है । यह झूठ नहीं है मृणाल कि पत्नी का धर्म पति है । घर पति-गृह है । उसका धर्म, कर्म और इसका मोक्ष भी वही है । समझती तो दो बेटा ।" (पृ० 20) भाई होकर बेटी की तरह माननेवाला मृणाल का भाई कभी मृणाल के दर्द को समझने का प्रयास नहीं करता । समाजिक लोक-लज्जा के बंधन में बुरी तरह उलझा हुआ वह मृणाल को कभी खुली हवा में साँस लेने के बारे में नहीं सोचता । ऐसा नहीं है कि उसे मृणाल

की वेदना का अहसास नहीं है, पर वह ब्याहता मृणाल के सुख के लिए समाज से ताल ठोंककर लड़ने की हिम्मत नहीं रखता। वह मृणाल से मौन क्षमाप्रार्थना करता है । मृणाल का भाई अन्तर्द्वंद्व में पिसकर जड़ सामाजिक मूल्य की समर्पित हो जाता है । वह कमजोर पुरूष के रूप में प्रस्तुत हुआ है जिसके संवेदना के नाम पर आँसू हैं, मौन है ओर सालता हुआ पश्चात्ताप है । उंपन्यास में उसकी मौजूदगी थोड़ी देर के लिए ही है पर है अत्यंत प्रभावशाली । यही स्थिति मृणाल की भाभी की भी है । वह पारंपरिक गृहिणी है, पारंपरिक मूल्यों में परिवार के बारे में सोचनेवाली परिवार की सुख-सुविधा और प्रतिष्ठा की चिंता करनेवाली ।

जैनेंद्र के उपर्यक्त पात्रों के संबंध में यह बात निस्संकोच रूप में कही जा सकती है कि जैनेंद्र ने इन पात्रों को वास्तविक जगत से जरूर लया है, पर उन्हें अपने दर्शन के अनुरूप गढ़ा है । मृणाल के भैया-भाभी मृणाल का पति, कोयले का व्यापारी ये जितने वास्तविक हैं, उतने ही अनगढ़, पर मृणाल और प्रमोद के चरित्र में एक स्पष्ट गढ़ाव देखा जा सकता है । मृणाल परस्पर विरोधी वैचारिकता में जीती है । इसका चरित्र जैनेंद्र द्वारा आरोपित दार्शनिकता में बुरी तरह उलझा हुआ है, यही स्थिति प्रमोद की भी है । पर प्रमोद का जीवन-दर्शन मृणाल के जीवन-दर्शन की अपेक्षा विशद है । फिर भी, दार्शनिक बोध के चलते उसके चरित्र का प्रवाह पर्वतीय घाटियों में बार-बार मुड़कर पाठकीय संवेदना को आघात पहुँचाता है । क्या वह समाज बचाया जाना चाहिए, जिसकी वैवाहिक संस्था में कुरीतियाँ घर कर गई है, जिसमें केवल पुरुषों की इच्छा का स्वागत है, नारियों के लिए कोई जगह नहीं है । अथवा उस समाज के जड़ मूल्यों के स्थान पर बौद्धिकता के झरोखों से आनेवाली प्राणदायी वायु से स्थापित नवीन मूल्यों का उल्लासपूर्वक स्वागत होना चाहिए । इसका जवाब मृणाल के चरित्र से नहीं मिलता, उलटे वह पाठकों को अपने वक्तव्यों से उलझाती चलती है । क्या सामाजिक मूल्यों में परिस्थियजन्य परिष्कार के लिए अवकाश नहीं होना चाहिए । समाज ही जड़ता को श्रद्धा और समर्पण दने से क्या हमारा कल्याण संभव है ? जैनेंद्र इस वास्तविकता पर नहीं आते और मृणाल को नितांत व्यक्तिवादी और सामाजिक जड़ आचारों के प्रति समर्पित दिखाते हैं ।

जैनेंद्र मे जिन पात्रों को अपने इशारों पर चलाया है, वे पात्र हमारे लिए बोझिल हो गए हैं, पर जिन पात्रों को इहोंने परिवेश के बीच से सीधे उठा लिया है, वे पात्र हमारे लिए सामान्य पात्र होकर भी सामाजिक संरचना की अच्छाई-बुराई को प्रस्तुत करने में सफल हुए हैं ।

जैनेंद्र के ऐसे सामान्य से पात्र पाठकीय स्वीकृति के पात्र हैं । मृणाल के संबंध में अनेक प्रश्न खड़े किए जा सकते हैं । डॉ० रामदरश मिश्र कहते हैं, "इस उपन्यास पर दो दृष्टियों से विचार हो सकता है (1) व्यक्तित्व की यथार्थवादिता की दृष्टि से (2) व्यक्तियों को गढ़ने वाले दर्शन की दृष्टि से 'कहना न होगा कि मृणाल का व्यक्तित्व उतना परिस्थितियों से निर्मित नहीं लगता जितना कि लेखक के दर्शन से । मृणाल का आरंभिक आचरण तो बहुत स्वाभाविक है । उसमें स्कूल की एक लड़की का खुलापन है, चहक है, शीला के भाई के साथ प्रेम-संबंध होने पर उसके मनकी महक भी बड़ी सहज है, वह एक चिड़िया बनकर उड़ जाना चाहती है । उसका स्वाभिमान बहुत ही आकर्षक है । यानी भाभी के हाथों बेंत से बुरी तरह पिटकर भी रोती नहीं, गुम-सुम पड़ी रहती है और न अपने प्यार को ही भला-बुरा कहती है । केवल उदास हो जाती है । लेकिन इस सहज उदासी के बाद तो जैसे वह जीवन-भर उदास रहने की कसम खा लेती है और उसकी उदासी को

बनाए रखने के लिए लेखक जगह-जगह प्रतिकूल परिस्थितियों की धूनियाँ लगा देता है । तभी तो इसकी शादी गैर-जरूरी ढंग से अधेड़ से कर दी जाती है । मृणाल के भाई के सामने वह आर्थिक मजबूरी नहीं थी जो प्रेमचंद के 'सेवासदन' में सुमन की माँ के सामने थी । मृणाल के पति का आचरण उनके अनुकूल ही था किंतु मृणाल का उच्चारण ऐसा नहीं है कि कहा जा सके कि यही हो सकता था । और भी कुछ हो सकता था तो ऐसा ही हुआ यह प्रश्न हो सकता है ।'' (हिंदी उपन्यास: एक अंतर्यात्रा पृ० 82) उपन्यासकार ने अपने दर्शन के अनुरूप मृणाल के चरित्र को ढाला है ।

यही कारण है कि पढ़ी-लिखी और समझदार मृणाल थोड़ी-सी सहानुभूति पाकर कोयले के व्यापारी को अपना सबकुछ समर्पित कर देती है । वह अर्थार्जन के लिए अध्यापन के क्षेत्र में आकर अपने स्वाभिमान की रक्षा कर सकती थी । पर उसने ऐसा नहीं किया । सूक्ष्म दर्शन बघारने वाली मृणाल से इस प्रकार के क्षुद्र जीवन का चुनाव कहीं से भी विश्वसनीय नहीं लगता । पति से परित्यक्त दोने पर मृणाल होने और न होने के बीच परिस्थितिगत यथार्थ और लेखक की दृष्टिगत संभावना के बीच चलती रहती है । इस प्रकार वह जो जीवन बिताती है, उसका जिम्मेदार सर्वत्र समाज नहीं होता, वह होती है । वह अपनी नियति स्वयं निर्मित कर लेती है जिसे ढोती हुई अंत तक चलती रहती है । पति से पिरत्यक्त होने पर वह आत्महत्या करने पर उतारू होती है, वर यह भी तो हो सकता है कि वह तेजस्वी नारी की तरह अपने पैरों पर खड़ी होकर समाज की व्यवस्था को चुनौती देती बल्कि ऐसी पति से नजात पाकर राहतं की साँस लेती, मृणाल जैसी पात्र में इस बात ही संभावनाएं थीं । परंतु लेखक ने वह रास्ता नहीं चुना ।'' (डॉ० रामदरश मिश्र, हिं० उ० एक अन्तर्यात्रा पृ० 82)

मृणाल का चरित्र परिस्थितिजन्य न होकर दर्शनजन्य है । समाज के विकलांग स्वरूप को परिवर्तित करने के लिए मृणाल संघर्ष करती और उसमें उसे अपेक्षित सफलता नहीं मिलने पर वह भीतर-बाहर से एक दम टूट जाती तो वह अपने संघर्षपूर्ण व्यक्तित्व से अपने वलिदान की पवित्र गाथा अवश्य प्रस्तुत करती है । पर, इस उपन्यास में उसका बलिदान जड़ बलिदान के रूप में ही प्रस्तुत हुआ है । पुरुष के प्रति पातिव्रत धर्म का एकांत समर्पण तथा पीड़ा और यातना को प्यार कर जीवन-भर अवसाद के अँधेरे में घुट-घुटकर मरना मृणाल को कहीं से भी व्यक्तिचेतना, आधुनिकबोध ओर गाँधीवादी दर्शन से नहीं जोड़ता । मृणाल अपने चिंतन के कारण नहीं अपने हठ में अपने लिए अपनी नियति के निर्माण के कारण हिंदी उपन्यास विधा में एक नए चेहरे को प्रस्तुत करती है । जैनेंद्र का दर्शन विशदता के स्तर पर विफल है, अत: मृणाल का चरित्र भी पाठकीय संवेदना के करीब नहीं हैं । वह अपने लिए एक छलनामय संसार गढ़ती है जिसकी अँधेरी और सड़ाँधभरी गलियों में वह भटकती है और भटकती हुई अपने भूढे स्वाभिमान के लिए दम तोड़ देती है ।

प्रमोद-यहाँ कैसे आई ?

मृणाल: भटकते-भटकते ही आई । (त्यागपत्र पृ० 74)

(प्रमोद) : सुनकर और न पूछा गया, बैठा रह गया । पर तब भी तो मुझे ऐसा नहीं मालूम हुआ कि बुआ उस भटकने का अब भी अंत चाहती है । आगे भी तो भटकना ही है । सदा के लिए भाग्य मे भटकना बदा है । मानो वह खूब जानती हैं, और जानकर अशेष भाव से तृप्त काम होकर इसे ही अपना लें यही चाहती

हैं ; जैसे किसी ओर और कृतार्थता नहीं है । किसी ओर और निगाह उठाकर देखना नहीं है । (पृ० 74)

मृणाल एक अटपटे और निरर्थक दर्शन के जाल का निर्माण करती है और उसी जाल में फँसकर अपना अंत कर लेती है । उसकी दृष्टि में यह आत्मबलिदान है पर वास्तव में उसका यह बलिदान बहुत बड़ा झूठ है । वह समाज को नही तोड़कर अपने को तोड़ती है । उसे डर है कि समाज टूटा तो उसका अस्तित्व ही समाप्त हो जाएगा । अत: वह समाज को नहीं छोड़ती, सबल है कि समाज की अपरिवर्तनीयता ही उसका (समाज का) वास्तविक अस्तित्व है या कि परिवर्तनीयता समाज के अस्तित्व के लिए अविवार्य है ? किसी भी बौद्धिक व्यक्ति के लिए दूसरे पक्ष में अपना मत देना ही सुगम होगा । समाज कभी खत्म नहीं होता वह हमेशा रहता है, रहेगा तभी मानव रहेगा । यह जितना सत्यहै, उतना ही यह सत्य है कि समाज हमेशा एक-सा नहीं रहता, उसमें समयानुमूल परिवर्तन आते हैं, उसकी चाल और गति स्थायी नहीं है, उनमें परिवर्तन की अनिवार्यता समाज के होने की प्रमाण है । मृणाल संभवत: इस सत्य से परिचित नहीं है । वह अपनी दृष्टि से समाज के स्वभाव पर विचार करती है और 'समाज से अलग होकर उसे टूटने से बचाने के लिए मंगलाकांक्षा में स्वयं को तोड़ती है । मृणाल समाज से अलग कहाँ होती है । वह अभिजात समाज से दूर होकर निम्न वर्ग के समाज में अपनी जीवन-यात्रा के अंतिम पड़ाव पर अपनी यह लीला समाप्त करती है ।

मृणाल का चरित्र दिग्भ्रांत मानसिकता में गढ़ा गया प्रतीत होता है । वह निरूद्देश्य भटकती है और अपने भटकाव को उद्देश्यपूर्ण बताने के लिए धुँधपूर्ण दर्शन का जाल बुनती है । डॉ० बच्चन सही कहते हैं कि 'त्यागपत्र' छायावादी वेदना की गद्यमय विवृत्ति है ।'' (हि०सा० का दूसरा इतिहास पृ० 10)

प्रमोद मृणाल की तरह अपने लिए कोई निसद्देश्य भटकाव नहीं चुनता । उसकी आँखें खुली हैं और वह समाज को अच्छी तरह देख-समझ रहा है । प्रमोद यदि मृणाल के चरित्र के कहीं बहुत करीब आता है, तो वह बिंदु है आत्माविसर्जन । उसकी दृष्टि में भौतिक समृद्धि मैल है जो आत्मा की ज्योति को ढँक लेता है । वह नहीं चाहता कि उसकी आत्मा भौतिकता से आवृत एवं दूषित हो । प्रेम इसके आगे घुटने टेक दे ।

प्रमोद के चिंतन के दो पक्ष हैं । एक तो वह समाज की विषमताओं को देखता है और उनके बारे में सोचता है, दूसरे वह उनकी प्रतिक्रिया के रूप में सामाधान की तलाश में बेचैन होता है । उसे अहसास है कि समाज विषम है और विषमता का एक अंग वह भी है यानी वह आदमी न होकर जग है ।'' (डॉ० रामदरश मिश्र, हिं० उ० एक अंतर्यात्रा, पृ० 84) प्रमोद की चित्रवृत्ति समाजोन्मुखी है, यही है उसका आत्मविसर्जन । वह व्यक्ति अहं से मुक्त समाज के लिए सोचता है पर दोनों के चिंतन में अंतर है । मृणाल समाज के प्रति विशेष दार्शनिक दृष्टि से चिंतन करती है, इसमें समाज का स्वरूप उसके व्यक्तिगत चिंतन से उभरता है । यह सामान्य चिंतन से अलग व्यक्तिवैचित्य से प्रभावित है । प्रमोद समाज के प्रति सामानय दृष्टि रखता है । वह समाज के लिए समाज के उत्कर्ष के लिए व्यक्ति का विसर्जन आवश्यक मानता है । वह गड़बड़ समाज से घृणा करता है । वह ऐसे समाज की कल्पना करता है जिसमें व्यक्ति की स्वतंत्र चेतना कहीं प्रतिरूद्ध न हो, वह अनुकूल सामाजिक मान्यताओं में अपने को सुरक्षित और सुखी पाए । प्रमोद जब कहता है, समाज के ऊपर चढ़-बढ़कर मैं उसे दबा सकता हूँ, बदल नहीं सकता । उसके फलने-फूलने का तो एक उपाय है, वह यह है कि मैं अपने को समाज की जड़ों में सींच दूँ । अज्ञात रहकर सच्चा बनूँ, झूठा बनकर नामवर होने में क्या धरा है ? ओह

वैसी नामवरी निष्फल है, व्यर्थ है, निरी रेत है । आत्मा को खोकर साम्राज्य पाया तो क्या पाया ? वह रत्न को गँवाकर धूल का ढेर पाने से भी कमतर है । (पृ० 41) प्रमोद के इस कथन में उसके चरित्र के दो पहलू उजागर होते हैं समाज में अपने अस्तित्व का विसर्जन और आत्मसत्य की प्राप्ति की अभिलाषा । आत्म सत्य की प्राप्ति भौतिक आग्रहों से विमुक्ति की दशा में ही संभव है प्रमोद इसे अच्छी तरह जानता है । वह सामाजिक विषमता के समाधान के लिए छटपटाता तो है, पर संघर्ष नहीं कर पाता । इसके समाधान के रूप में वह भौतिक समृद्धि के स्थान पर आत्मा-सत्य को महत्व देता है और प्रकारांतर से वह यह कहना चाहता है कि सामाजिक विषमता ही जड़ भौतिक समृद्धि और धन है । धन के स्थान पर समाज में आत्मसत्य को प्रतिष्ठा मिल जाए तो विषमता दूर हो सकती है । आरमसत्य प्राप्त होने पर लोग धन ही ओर नहीं भाग कर प्रेम और इन्सानियत की ओर प्रवृत्त होंगे ।

प्रमोद के चरित्र का सबल पक्ष यह है कि वह सामाजिक विषमता के एक अंग के रूप में अपने को देखता है । वह धन अर्जित कर समाज में प्रतिष्ठित होना चाहता है, इसका ध्यान आत्मशुद्धि की ओर नहीं है । पर जब इसे ज्ञात होता है कि धनार्जन की प्रवृत्ति से समाज में विषमता बढ़ती है तक वह अपनी इस क्षुद्र पर पश्चात्ताप करता है । वह पाजी से त्यागपत्र दे देता है । प्रमोद का यह कदम नकार ही प्रस्तुत करता है । अपने कर्तव्य से विमुख होकर समाज की विषमता को दूर करने का यह उपाय नकारात्मक है । जज होते हुए भी वह समाजिक विषमता को दूर करने लिए आत्मसत्य से गुजरकर बहुत कुछ कर सकता था, पर वह ऐसा नहीं करता । जजी से त्यागपत्र देना उसके व्यक्तित्व के नकारात्मक पक्ष को उजागर करता है । इस तरह, मृणाल जिस पलायनवादी प्रवृत्ति से समाज के लिए अपने को तोड़ती है उसी तरह प्रमोद भी समाज की विषमता समाप्त करने के लिए अपनी नकारात्मक प्रवृति का प्रमाण देता है । मृणाल और प्रमोद में सिर्फ फर्क यह है कि प्रमोद जहाँ सामाजिक विषमता पर गौर करता है और उसे दूर करने के लिए घटपटाता है वहाँ मृणाल इससे प्राय: अपरिचित सी रहती है और वेदनायमी कविता की प्रतिमूर्ति बनकर अपने कारूण्य से समाज की शांत जल-सतह पर एक लहर पैदा करने का (शायद) स्वप्न देखती है । सारी विषमता की घूमती हुई गति को व्यक्ति के प्रेम, त्याग, समर्पण के बिंदु पर विसर्जित कर दिया गया है । (हि० उ० एक अन्तर्यात्रा पृ० 84)

जैनेंद्र ने प्राय: अपनी दार्शनिक दृष्टि के आधार पर चरित्रों को गढ़ा है अत: त्यागपत्र में मृणाल और प्रमोद के चरित्र में कर्तव्य से ज्यादा दार्शनिक चिंतन का हस्तक्षेप हुआ है । मृणाल ओर प्रमोद से इतर पात्रों में जो सहजता है, वह कृति को पाठकीय संवेदना के करीब ले जाती है । मृणाल और प्रमोद के चरित्र में दार्शनिक हस्तक्षेप उन्हें खुलकर प्रस्तुत होने में रोड़े अटकाता है । प्रमोद का बुआ के प्रति रागपूर्ण समर्पण किस तरह बुआ की जीवनयात्रा के विभिन्न पड़ावों के साथ द्वंद्व को समर्पित होता है, उसका बड़ा ही मार्मिक वर्णन जैनेंद्र ने किया है । एक तरफ मृणाल बुआ के प्रति श्रद्धापूर्ण अनुराग और दूसरी तरफ उसके कोयलेवाले के प्रति समर्पण के कारण घृणा का भाव । अन्तर्द्वन्द्व में बुरी तरह पीड़ित प्रमोद हमें बहुत प्रभावित करता है ।

प्रमोद निरूपाय है । वह जगतगति को समझ नहीं पाता । वह सामाजिक विषमता के मूल कारण तक नहीं पहुँच पाता । वह 'आर्तनाद' के कारण को जानना चाहता है । कभी वह भवितथ्य और नियति को सत्य मानकर उसे स्वीकर करता है तो कभी उसका शंकालु हृदय जगत्पिता से यह प्रश्न करता है कि 'जगत्पिता, तेरी लीला

के नीचे यह सब आर्तन्तद क्या है । (पृ० 40) वह परम कल्याणमय से पूछना चाहता है कि क्या मानवी प्रयत्न का कोई अर्थ नहीं होता ? सारा कुछ नियति के संकेतों पर ही होता है । प्रमोद नियति कर्मफल के व्यूह में फँसकर वहाँ से निकलना चाहता है । वह सत्य के संधान की ओर चल पड़ता है । आत्मानुभव को सत्य की कसौटी मानकर इस निर्णय पर पहुँचता है कि अपने को खो देने से ही भौतिक समृद्धि की प्राप्ति होती है । यह भौतिक समृद्धि आत्म-सत्य के बुरी तरह कुचल देती है और व्यक्ति को खोखला बना देती है । प्रमोद आत्मनिरीक्षण करता है और उसे सत्य की मणिज्वाला प्राप्त होती है ।'' जीवन में एक बात तो नहीं है, दसियों बातें हैं । वे जी में ऐसी जगह बैठ गई हैं कि घुमड़ती रहती है । उन पर आँखें मीचूँ तो भी नही मिच सकती । वे मेरे भीतर अनुकूल वायु में कभी-कभी ऐसी सुलग जाती है कि उनकी लौ के प्रकाश में देख उठता हूँ कि सचाई क्या है । तब मेरी जजी शाप दीखती है और जान पड़ता हे कि वही प्रवंचना है । सचाई तो छोटा बनने में है । बलि बनने में है । बहुत कुछ देखा है । बहुत कुछ पढ़ा है, लेकिन वह सब झूठ है । सच इतना ही है कि प्रेम के भार में भारी रहकर जो जीवन के मूल में पैठ है, धन्य है । जो गर्व में फूला उस जीवन की फुनगियों पर चहक रहा है, वह भूल है ।'' (पृ० 41) प्रमोद आत्मासत्य का साक्षात्कार करता है । इसका आत्सत्य प्रेम है, उसका आत्मसत्य समर्पण और न्याछावर होना है, इसका आत्मसत्य छोटा बनना है । छोटा बने बिना समर्पण संभव नहीं और समर्पण के आभाव में अहं का विस्तार नहीं रुक सकता । अहं है तो यह विसर्जन को बाधित करता है । प्रेम के प्रवेश को रोकता है । अहं को रखकर कोई प्रेम नहीं कर सकता ।

प्रमोद दर्द को जीवन की विभूति मानता है । वह दर्द जो बूँद-बूँद उसके भीतर भरता जाता है मानस-मणि है । इसी मणि के प्रकाश में मानव का गतिपथ उज्ज्वल होता है । जीवन के गहन वन के अँधेरे में यह दर्द भटकाव से बचाता है । इतनी उम्र बिताकर बहुतों को मरते और उनसे बहुतों को जीते देखकर अगर मैं कुछ चाहता हूँ तो वह यह है कि भीतर का दर्द मेरा इष्ट हो । धन न चाहूँ मन चाहूँ । धन मैल है । मन का दर्द अमृत है । सत्य का निवास और कहीं नहीं है । उस दर्द की साभार स्वीकृति में ज्ञान की और सत्य की ज्योति प्रकट होगी । अन्यथा सब ज्ञान ढकोसला है और सब सत्य की पुकार अहंकार है ।'' (पृ० 42) प्रमोद के अनुसार 'दर्द' व्यक्ति को अहंकार ओर अपने में सिमटने से मुक्त कर फैलने का अवसर देता है व्यक्ति इसी दर्द के कारण अपने को विसर्जित कर सकता है ।

प्रमोद की दृष्टि में वह प्रणम्य है जो जगत की (समाजकी) कठोरता का बोझ स्वेच्छापूर्वक अपने उठाकर चुपचाप चले चलते हैं और फिर समय आपने पर इस धरती माता से लगकर उसी भाँति चुपचाप सो जाते हैं । (देखें पृ० 42) जगत की कठोरता का बोझ स्वेच्छा पूर्वक उठाकर चुपचाप चलते चलना कहीं से भी वांछनीय प्रतीत नहीं होता, क्योंकि उससे तो जिस दुर्भाग्य चक्र ही सृष्टि होती है, उससे किसी का भी निकल पाना सदा मुश्किल है । ऐसी प्रवृत्ति से न तो व्यक्ति का कल्याण संभव है और न समाज का । जगत या समाज की गड़बड़ी के विरोध में तो आवाज उठनी ही चाहिए । इसकी प्रतिक्रिया में नवदृष्टि के संकल्ण मजबूत होनेही चाहिए । प्रतिरोध शून्यता नियति ही कार्यता है जिससे शोषण की सीमा को बल मिलता है । प्रमोद यहाँ जिस दर्शन की बात करता है, वह किसी भी रूप में कल्याणकारी नहीं है । यह एक तरह से मृणाल के चरित्र को सार्थक बनाने के लिए लेखक का गढ़ा हुआ दर्शन है । प्रमोद देख-समझकर भी आगे नहीं बढ़कर पीछे की ओर लौटता है और वहीं पहुँचता है जहाँ मृणाल पहुँचती है । मृणाल भी प्रमोद की तरह ही कहती है- ''सहायता मुझे इसलिए

चाहिए कि मेरा मन पक्का होता रहे कि कोई मुझे कुचले, तो भी मैं कुचली न जाऊँ और उनती जीवित रहूँ कि उसके पाप के बोझ को भी ले लूँ और सबके लिए प्रार्थना करूँ ।'' (पृ० 65)

उपन्यास का कैनवास बहुत छोटा है जिसपर दर्शन की सूक्ष्म रेखाएँ विराट अर्थवता के साथ खींची गई हैं । इस उपन्यास में अनुभूति के साथ दर्शन और क्रिया संपादन के साथ जीवन दृष्टि के अभ्युदय का अभाव है । यही कारण है कि पात्रों की सहज गति बाधित है । लेखक उन्हें अपनी ओर से गति देकर उनकी सहजता छीन लेता है । जिस तरह प्रमोद का जजी से त्यागपत्र देना सामाजिक विषमता को दूर करने में सहायक सिद्ध नहीं होता, उसी तरह मृणाल का चुपचाप दर्द झेलने से समाज के कल्याण की कोई संभावना नहीं दीखती । मृणाल के बलिदान में प्राण तत्व का अभाव है । जैनेंद्र गद्य में वैचारिक कविता लिखते से प्रतीत होते हैं ।

''जैनेंद्र पात्रों को सामाजिक-यथार्थता की सार्थकता तो नहीं ही प्रदान करते' उनके कार्यों और व्यवहार को विश्वसनीयता भी नहीं दे पाते । ये पात्र देखने में बहुत सहज होते हैं, किंतु वास्वत में वे विशेष प्रकार की व्यक्तिवादी भूख और लेखक के गूढ़ आरोपित दर्शन से परिचालित होते हैं । वे अपनी स्थितियों में सदा वह रास्ता चुनते है । जो रास्ता सहज नहीं होता और जिसे सामाजिक चेतना और स्वास्थ्यवाला कोई दूसरा व्यक्ति नहीं चुनता इसलिए जैनेंद्र के पात्र सामाजिक विसंगति से छुटकर भी उसके प्रति सक्रिय प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं करते एक विशेष प्रकार की यातना लिए उसे प्यार करते हुए चलते हैं-या सामाजिक विंसंगति से छुटते नहीं व्यक्ति की विसंगतियों में जीते सामाजिक परिवेश से बेखबर रहते हैं । (डॉ० रामदरश मिश्र, हि० उ० एक अंतर्यात्रा, पृ० 81)

2.3.3. देशकाल या वातावरण

कथावस्तु को ग्रहणीय और विश्वसनीय बनाने के लिए देशकाल या वातावरण की आवश्यकता पड़ती है । देशकाल या वातावरण पात्रों की गति मानसिकता का निर्माण करते हैं । वातावरण (देशकाल) की गरिवंतता पात्रों के वैशिष्ट को उद्घाटित करती चलती है । वातावरण के अणु-अणु की छाप पात्रों के व्यवहार और मानसिकता पर पड़ती है । अत: लेखक (कथाकार) इसके प्रति ज्यादा सावधान होता है । ऐसा कहा जा सकता है कि वातावरण मूक पात्रों की वाणी है और वाचाल पात्रों की वाणी में नए-नए अर्थों का प्रेरक । वातावरण पात्रों के व्यवहारमें, वाणी में और उनके कथ्य में बहुत कुछ जोड़ता चलता है । पात्र जो वाणी द्वारा व्यक्त नहीं कर पाते, वातावरण उन्हें व्यक्त करने में समर्थ होता है । वातावरण की चुप्पी भी पात्रों की वाणी में बहुत कुछ जोड़ने में समर्थ होती है ।

जैनेंद्र ने 'त्यागपत्र' उपन्यास में वातावरण (देशकाल) का सार्थक विन्यास किया है । इस कृति में अभिजात वर्गीय एवं निम्नवर्गीय वातावरण अपने-अपने वैशिष्ट्य के साथ प्रस्तुत हैं । अभिजात वर्गीय परिवार की सोच और निम्नवर्गीय जिदंगी के आचरण को (सजाज के परस्पर दो विरोधी ध्रुवों की पहचान को) रचनात्मक स्तर पर वर्णित किया है । शादी होने के बाद हुआ मृणाल की विदाई और प्रमोद के हृदय में उठनेवाली हूक तथा प्रतिक्रिया से पूर्ण सामाजिक स्थिति का वर्णन जिस मनोवैज्ञानिक स्तर पर हुआ है, वह प्रमोद की मुखरता और मृणाल की प्रतिक्रियाविहीन मौन स्वीकृति का सच्चा ब्योरा है । उस वातावरण में प्रमोद और मृणाल के जीवन की अलग-अलग दिशाओं का निर्धारण होता है ।

"शहर के उस महल्ले में जाते हुए मेरा मन दबा आता था । कहाँ बुआ कहाँ यह जगह, यह जिंदगी । वहाँ नीचे दर्जे के लोग रहते थे । भीतर गली में गहरे जाकर बुआ की कोठरी थी । बनिया बाहर एक दुकान लेकर दिन में कोयले का व्यपार करता था । ......कोठरी 9X10 वर्ग फिट से बड़ी न होगी । बाहर थोड़ी खुली जगह थी, जहाँ धोती-अँगोछे सूखा रहे थे । कमरे में एक ओर कपड़े चिने थे । उनके पास ही दो-एक बक्स थे । उनके ऊपर बांस टाँगकर कुछ काम के कपड़े लटका दिए गए थे । बुआ की पीठ की तरफ दो-एक तीन के आधे कनस्तर, दो-चार हँड़िया और कुछ मिट्टी के सकोरे ओर टीन के डिब्बे थे । वहाँ पास कुछ पीतल, एल्मुनियम के वर्तन रखे थे और एक टीन की बाल्टी और पानी का घड़ा भरा था । एक कोने में कोयले की बोरी आधी झुकी हुई खड़ी थी । (पृ० 46-47) इस वातावरण सृष्टि से बुआ के अभावग्रस्त जीवन का साक्षात्कार होता है । उपर्युक्त अनुच्छेद की अंतिम पंक्ति अपनी प्रतीकांमकता में बुआ के रिक्त होते और दु:खों की आग में जलते जीवन की व्यथा का चित्र प्रस्तुत करती है । यही वातावरण की रचनात्मकता है ।

दूसरा उदाहरण लें । "वह (बुआ) बीमार थी खटिया से लगी पड़ी थी । चार-पाँच ऊपर वर्णन के स्त्री-पुरुष आसपास थे । उसके चेहरे पर बुआ की अवस्था के लिए आग्रह और चिंता लिखी थी । वे परेशान मालूम होते थे, पर बात वे बड़ी लापारवाही के साथ करते थे और उनबातों के खुलेपन से जी में मानो मेरे मितली चढ़ती थी । बुआ के प्रति यद्यपि उनका आदर प्रकट था, पर उनके लिए सभी तू और 'इसका' व्यवहार करते थे । हिया-शर्म वहाँ न थी और उस बुआ की खाट के पास भी उनमें आपस में यह इशारे हुए बिना न रहत थे । उन्होंने मुझ अपरिचित को बीच में पाकर हर्ष प्रकट नहीं किया । मानो मैं कोई विदेशी जंतु था अविश्वसनीय भयावह । यह उनमें से बहुतों को निश्चय था कि खाट पर पड़ी हुई उनकी परिचिता रोगिणी का मैं कोई पहला प्रेमी हूँ और मैं ही हालत का जिम्मेदार हूँ । उन्होंने ऐसे खुलकर ये संदेश प्रकट किए कि मैं अंदर-ही-अंदर सिमटकर रह गया, कुछ भी न कह सका ।" (पृ० 86) । पूरे अनुच्छेद में नगर ही उस सड़ाँध का वर्णन है जिसमें बुआ जानबूझकर फँसती है । प्रस्तुत वातावरण की दृष्टि सोद्देश्य है । इससे भद्र ओर अभद्र के वर्गीय सत्य को उजागर किया गया है और वह भी मृणाल की अनुभूतियों को आधार बनाकर ।

जैनेंद्र कुमान ने 'त्यागपत्र' में वातावरण को प्राय: वर्णानात्मक ही रखा है, वह प्रतीकात्मक एवं संकेतात्मक बहुत कम है । जैनेंद्र द्वारा सृष्ट वातावरण यथार्थपरक है । काव्यात्मक वातावरण जो शब्द-शब्द मुं गूढ़ प्रतीकात्मक अर्थ वहन करता है, जैनेंद्र के इस उपन्यास में नहीं है । उन्होंने वातावरण की सृष्टि पात्रों की परिस्थित एवं मानसिक प्रवृत्ति को स्पष्ट करने के लिए की है । इसमें उन्हें सफलता मिली है ।

2.3.4 संवाद

संवाद या कथोपकथन का चरित्र-चित्रण में बहुत महत्व है । पात्रों की बातचीत के द्वारा ही हम उनसे भली-भाँति परिचित होते हैं । वर्णन के द्वारा उनके सूक्ष्म मनोभाव, प्रतिक्रियाएँ, संकल्प-विकल्प, विचार और वितर्क आदि का जैसा यथातथ्य और प्रभावशाली चित्र नहीं दिया जा सकता । संवाद पात्रों को सजीव बना देते हैं तथा कथानक में नाटकीयता का समावेश करके उसके प्रभाव को तीव्र कर देते हैं । कभी-कभी किसीपात्र के मुख से निकला हुआ एक शब्द भी समस्त उपन्यास में गूँजता सुनाई देता है । संवाद द्वारा कथावस्तु का विकास और पात्रों का चरित्र-चित्रण अभीष्ट होता है, अत: उपन्यास में उन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उसका

उपयोग होना चाहिए । (साहित्यकोश भाग न, पृ० 124)

जैनेंद्र ने संवादों के माध्यम से पात्रों की मानसिकता का उद्घाटन किया है, विशेषत: मृणाल और प्रमोद की मानसिकता का । मृणाल और प्रमोद के संवाद तलस्पर्शी हैं और उनके व्यक्तित्व के विविध रँगों को प्रस्तुत करने वाले हैं । उनके संवादों के माध्यम से हम उनके भीतर की अनेक हलचलों से परिचित होते हैं । मृणाल और प्रमोद के बीच के संवाद संक्षिप्त, मार्मिक और व्यंजनापूर्ण हैं । मृणाल के शब्दों में उसके हृदय की पीड़ा व्यंग्य में उतरी-सी दिखाई पड़ती है ।

मैंने (प्रमोद ने) पूछा ''तुम सच-सच बताओ, वहाँ जानाा चाहती हो या नहीं ?''

बुआ ने कहा, ''सच बताऊँ ?''

''हाँ, बिलकुल सच-सच बताओ ।''

बुआने हँसकर कहा'' क्यों सच-सच बता दूँ ?''

मैंने नाराज होकर कहा । नहीं बतायोगी ?''

बोली'' अच्छा, सच-सच बताती हूँ । मैं तेरे साथ रहना चाहती हूँ । रखेगा ?''

..........एक बात बता, तुझे बेंत खाना अच्छा लगता है?''

मैंने (प्रमोद ने) कहा ।'' बेंत ?'बोलीं (मृणाल), ''मै। एक बार तुझे बेतों से पीटना चाहती हूँ । देखूँगी, तुझे कैसा अच्छा लगता है ।''

मैं (प्रमोद) बोला, क्या कहती हो बुआ ? वह मारते हैं ?''

''हाँ मारते हैं ।''

''बेंत से मारते हैं ?''

''हाँ, बेंत से मारते हैं ।''

''क्यों मारते हैं ?''

''मैं खराब हूँ इसलिए मारते हैं ।'' (पृ० 26-27) उपर्युक्त संवाद प्रमोद और मृणाल के चरित्र को खोलता है, कथा को विस्तार देता है, कथानक में जिज्ञासा भरता है और मृणाल, की नियति की क्रूरता की पृष्ठभूमि तैयार करता है । जैनेंद्र के जितने संवाद नाटकीय हैं, उतने ही सरल और सरस है । जैनेंद्र के संवादों से उनकी भाषिक क्षमता का पता चलता है । संवाद के छोटे-छोटे वाक्यों में जो तीव्रता और ऊर्जा भरी गई है, वह स्पृहणीय है ।

मिनी (मृणाल) और उसके बड़े भैया के बीच हुई बातचीत ।

''मिनी सच बता, क्या बात है ?...मृणाल मैं देखता हूँ तुम्हें तकलीफ है । बताओगी नहीं तो मैं कैसे

जानूँगा ? क्या करूँगा ? मिनी, तुझे पिताजी की तो क्या याद होगी । तू नन्हीं सी थी, तभी पिताजी उठ गए, माँ तो देखी ही कब है ! सबकी जगह में ही तेरे लिए रह गया । मुझसे न कहोगी, तो किसे कहोगी ? मृणाल बेटा, सच बता, क्या बात है ?

बुआ ने कहा," कुछ भी बात नहीं है बाबूजी, पर मैं जाना नही चाहती हूँ।"

"जाना नही चाहती हो, यह तो मैं देखता हूँ । पर भला ऐसा कहीं होता है। और कब तक नहीं जाओगी ?"

"बिलकुल नहीं जाऊँगी ।"

बाबूजी ने झीककर कहा, "तो क्या करोगी ?"

"आप यहाँ से निकाल देंगे, तो यहाँ से भी निकल जाऊँगी ।"

"पिताजी मुझे नन्हीं छोड़ जहाँ चले गए हैं, कोई राह बता दे तो मैं वहीं जाना चाहती हूँ ।"

पूरे संवाद में बड़े भैया की विवशता और मृणाल की गहरी वेदना सतह पर आने को व्यग्र-सी दीख पड़ती है । बड़े भैया का झूठ, पुरातन संस्कारों में जकड़े होने की लाचारी और मृणाल की जीवनयात्रा के खतरनाक मोड़ का संकेत उपयुक्त संवाद में देखा जा सकता है ।

पूरे उपन्यास में प्रमोद और मृणाल के संवाद के माध्यम से कथानक को विस्तार देने के साथ अर्थवान बनाया गया है । संवाद के माध्यम से ही प्रमोद और मृणाल एक-दूसरे के दार्शनिक सिद्धांत से परिचित होतो हैं, उनमें एक-दूसरे के प्रति अनेक प्रश्न जन्म लेते हैं और वे उन प्रश्नों के उत्तर के लिए अपने को तैयार करते हैं । प्रश्नों के उत्तर ने मिलने पर उनके भीतर एक लाचारी घुमड़ती है । इस प्रकार जैनेंद्र के संवाद चित्त को मथते हैं, दृष्टि का वैभिन्य प्रस्तुत करते हैं और चरित्र के अनेक प्रसंगों को खोलते हैं । जैनेंद्र के सहज और अर्थवान संवादों ने संपूर्ण औपन्यासिक क्षितिज को प्रात:कालीन आकर्षक अरूणिमा से परिपूर्ण कर दिया है ।

2.3.5 शैली

कथन की रीति को शैली कहा जाता है । प्रत्येक रचनाकार अपने ढंग से अपनी बात प्रस्तुत करता है । देखा जाता है कि परिस्थिति के प्रति अलग-अलग रचाकार की अलग-अलग प्रतिक्रिया होती है । किसी विशेष परिस्थिति को अभिव्यक्त करने का ढंग सबका एक समान नहीं होता । सब अपने-अपने मानसिक, स्तर विशिष्ट संस्कार, बोध और सोचके मुताबिक एक ही प्रकार की परिस्थिति में अपनी अलग-अलग प्रतिक्रिया प्रस्तुत करते हैं । उस विशेष परिस्थिति में उनकी अलग-अलग अभिव्यक्ति की शैली है । अभिधात्मक, लाक्षणिक, व्यंजनात्मक, संकेतात्मक, प्रतीकात्मक, चित्रात्मक, वर्णानात्मक, कथात्मक आदि अनेक प्रकार की शैलियों हो सकती है । उपर्युक्त शैलियों में से किन्हीं दो या दो से अधिक शैलियों के संयोग से भी भिन्न प्रकार की शैली का निर्माण हो सकता है ।

जैनेंद्र कुमार के त्यागपत्र में सूत्रात्मक, अभिनयात्मक (संवादों के प्रसंग में) तथा वर्णात्मक शैली की सफल

प्रयोग किया । उन्होंने कही-कहीं प्रतीकात्मक शैली का भी सफल प्रयोग किया है ।

"बुआ डूब उतरा रहीं थीं । तैरने का कब अभ्यास किया था ? और कहाँ किस तैराक की छाती है कि बढ़े । दम वहाँ फूल आता है, लेकिन बुआ ने कहा" नहीं प्रमोद, नहीं । तुम मेरे वही प्रमोद हो, क्या मैं भूल सकती हूँ ? लेकिन किनारा छूटा, सो छूटा, सो छूटा । मैं यहाँ थककर डूब भी गई तो क्या बुराई है ? आखिर क्या इस समन्दर के पेट में ही हम सबको जगह नहीं है ? प्रमोद, मेरा प्रेम लो ।.......पर क्या एक बार अथाह में आकर फिर लौटूँ । नहीं, एसी अभागिन मैं नहीं बनूँगी ।" (पृ० 79)

"मैंने (प्रमोद ने) रस्सी फेंकी । उन्होंने उसे नहीं पकड़ा और हँस दिया । कहा प्रमोद तुम्हारी मैं बड़ी कृतज्ञ हूँ ।"

"मैंने चिल्लाकर कहा," तुम मुझे प्रेम नहीं करती हो ? करती हो तो आ जाओ । (पृ० 79) मृणाल का समुद्र (समन्दर में डूबने का प्रसंग प्रतीकात्मक है । प्रमोद मृणाल को गर्हित जीवन से निकालना चाहता है और मृणाल वहाँ से आना नहीं चाहती । उसे समाज का अभिजात वर्ग कृत्रिम सदाचार के कपट जाल में फँसा-सा प्रतीत होता है । वह निम्नों के बीच ही रहकर मर जाना श्रेयस्कर समझती है । इसी तथ्य को उपन्यासकार ने उपन्यास के तीन पृष्ठों में प्रतीकात्मक ढंग से चित्रित किया है । इस प्रतीकात्मक शैली के कारण मृणाल के जीवन की त्रासदी अभिव्यक्त हुई है । विस्तृत दुनिया में अकेले चूल पड़ना अथाह समुद्र में डूबने के समान है । मृणाल उसमें डूब रही है । इस अथाह सागर में डूबने के लिए दृढ़ संकल्प है, उसके अब अभिजात का मोह त्याग दिया है । अथाह सागर में डूबना उसकी नियति है । उसे अपनी यह नियति बड़ी प्यारी है । जैनेंद्र नेइस प्रतीकाविधान के माध्यम से मृणाल के चरित्र की ग्रंथियों को खोलने का अद्‌भुत प्रयास किया है ।

मृणाल जहाँ अपनी जीवनयात्रा के विभिन्न पड़ावों की कथा कहती है वहाँ जैनेंद्र वर्णानत्मक शैली का सहारा लेते हैं । उस शैली की विशेषता यह है कि इसमें कथा का रस अक्षुण्ण है, नीरसता और उबाउपन से मुक्त कथा सहज प्रवाहमयी है । चूँकि मृणालअपनी कथा स्वयं कह रही है और वह भी प्रमोद से अत: उसमें आत्मीयता और खुखेपन का विश्वास भी घुल-मिल गया है ।

इस उपन्यास में संवादों से जहाँ कथा आगे बढ़ती है वहाँ अभिनयात्मक शैली द्रष्टव्य है । वातावरण सृष्टि में जैनेंद्र ने चित्रात्मक शैली का और उसके साथ कहीं-कहीं संकेतात्मक शैली का भी प्रयोग किया है । मृणाल कोयले के व्यापारी के साथ जिस कोठरी में रहती है, उसका वर्णन चित्रात्मकशैली में हुआ है । कोठरी में एक होने में रखी गयी कोयले की झुकी और आधी खाली बोरी का चित्र चित्रात्मक कम संकेतात्मक Suggestive ज्यादा है । वह सीधे मृणाल के जीवन की विडंबना का वर्णन कर रहा है । तात्पर्य यह कि जैनेंद्र ने इस उपन्यास में अनेक शैलियों का सफल रसायन तैयार किया है। यही कारण है कि यह उपन्यास अपनी संक्षिप्तता में भी विराट है । जीवन, जगत ओर समाज पर विचार प्रस्तुत करते समय मृणाल और प्रमोद दार्शनिक हो गए हैं । अत: उनके वतवय सूत्रात्मक हैं जो व्याख्या की अपेक्षा रखते हैं । जैनेंद्र इस सूत्रात्मक शैली का प्रयोग करते हैं । समाज में किसी नारी का अकेले चल पड़ना अथाह समुद्र में आत्महत्या की तैयारी के समान है । इस तथ्य को जैनेंद्र ने समुद्र और धरती के रूपक के मध्यम से अभिव्यक्त किया है । अनेक शैलियों के मिश्रण से निर्मित 'त्यागपत्र' का कथा-रासायन आकर्षक और प्रभावशाली है ।

2.3.6 उद्देश्य : रचनाकार जीवन के अनुभवों से उपलब्ध अपनी दृष्टि को ही अपनी रचनाओं में प्रस्तुत करता है । किसी रचना में अभिव्यक्त जीवनदृष्टि जीवन सत्य ही रचाना की उद्देश्य होती है । कला की दृष्टि से वस्तुत: वही उपन्यास श्रेष्ठ है जिसका लेखक पाठकों पर सफलतापूर्वक यह प्रभाव डाल सके कि उसकी रचना से जिस जीवन-दर्शन का संदेश मिलता है वह उसने बाहरसे आरोपित नहीं किया है ।" (हि० सा० कोश, भाग 1 पृ० 125)

'त्यागपत्र' वैवाहिक विडंबना पर आधारित है । विवाह का संबंध केवल दो व्यक्तियों से नहीं पूरे समाज से है । इस विडंबना का शिकार मृणाल है । (हि० सा० का दूसरा इतिहास, पृ० 408) ऊपरी तौर पर ऐसा प्रतिभासित होता है कि उपन्यासकार ने उपर्युक्त उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही यह उपान्यास लिखा है, पर शीर्षक 'त्यागपत्र' एवं प्रमोद का जजी से त्यागपत्र दे देना ये उपन्यास के दूसरे उद्देश्य की ओर इशारा कर रहे हैं । सूक्ष्म विश्लेषण के उपरांत यह तथ्य उजागर होता है कि उपन्यासकार ने इन दोनों उद्देश्यों में से किसी भी उद्देश्य के साथ न्याय नहीं किया है । जिस तरह विवाह की विडंबना को प्रेमचंद का उपन्यास 'निर्मला' पूरी ईमानदारी से प्रस्तुत करता है, उस तरह 'त्यागपत्र' नहीं कर पाता । मृणाल के भाई के समक्ष आर्थिक मजबूरी नहीं है कि मृणाल एक अधेड़ पुरूष से ब्याह दी जाती है । 'सेवासदन' (प्रेमचंद) में सुमन की माँ के सामने आर्थिक मजबूरी थी, अत: सुमन का सारा जीवन ही वैवाहिक विडंवना की शूली पर चढ़ जाता है । जैनेंद्र ने वैवाहिक विडंबना के यथार्थ को चिन्तित नहीं कर मृणाल की अविवेकपूर्ण स्वच्छंदता के दुष्परिणामों का ही लेखा-जोखा प्रस्तुत किया है । इसमें उनकी दृष्टि यथार्थजनित न होकर कल्पना-जनित दीख पड़ती है । वे वेदना को जीवन-सत्यकी उपलब्धि का आधार मानकर 'त्यागपत्र' की सृष्टि करते हैं और व्यष्टि के समष्टि के लिए विसर्जित होने को जीवन की सार्थकता के रूप में वर्णित करते हैं ।

'त्यागपत्र' शीर्षक के आधार पर इस उपन्यास का उद्देश्य है आत्मसत्य की प्राप्ति । भौतिक समृद्धि हमें 'सत्य' से दूर ले जाती है और आत्मिक ज्योति हमारे जीवन को कृतार्थ करती है । प्रमोद कहता है- "उत्तर है कि मैं क्षुद्र था । क्यों वकालत में आँख गड़ाकर खुद भूलने में लगा रहा और यों अकर्तव्य करता रहा । उत्तर है कि मैं बुद्धिमान था, सरल नहीं था । तोल-तोल कर चला और तराजू अपने हाथ में रखी । इसलिए आज जो असली तराजू है उसमें हलका तुल रहा हूँ ।.......... यह सब मैल है जो मैंने बटोरा है । मैल कि मेरी आत्मा की ज्योति को ढँक रहा है । मैं सब यह नहीं चाहता हूँ ।" (पृ0 86) प्रमोद इसीलिए जजी से त्यागपत्र दे देता है ।

यह हो सकता है कि मृणाल के विशिष्ट चरित्र को उकेरने के लिए ही यह उपन्यास लिखा गया हो । इसीलिए 'सामान्य' के स्थान पर 'असमान्य' को इस उपन्यास में महत्व दिया गया है सामान्य परिस्थिति में सामान्य सी घटनेवाली घटना के स्थान पर कल्पित घटनाओं के आधार बनाकर मृणाल जैसी असामान्य चरित्र का निर्माण किया गया है जो पढ़ी-लिखी होकर भी एक विचित्र मानसिकता में जीती है । वह 'नारीत्व' की परवाह नहीं करती, जीवन संघर्ष से पलायन करती है और एक निरर्थक दार्शनिकता ओढ़कर अपने कमजोर आग्रह को उदात्त आग्रह में परिणत करने का मांग करती है । अभिजात और निम्न वर्ग, वेदना और समर्पण, सेवा और पत्नीत्वसे संबद्ध उसका चिंतन पक्ष विश्वनीय नहीं लगता । वह अपने चिंतन पक्ष में विरोधों से उबर

नहीं पाती । उसके चरित्र में एक असमर्थ तर्क उसे किसी भी रूप में महनीय नहीं बना पाता । वह कोयलेवाले व्यापारी को उसके परिवार से जोड़ने के लिए ठान लेती है । "परिवार उसका वहाँ अकेला है । मुझे वह नहीं झेल सकता । मेरी कोशिश है कि यह मुझसे उक्ता जाए । अपनी अवस्था मैं जानती हूँ । पेट में बालक है लेकिन ऐसी अवस्था में भी स्वार्थ की बात सोचना ठीक नहीं । मैं उसे उसके परिवार में लौटाकर ही मानूँगी । अब समय आ गया है कि उसे इस बात की अकल आ जाए कि मैं उसकी सरवस नहीं हूँ ।" (पृ० 60)

तात्पर्य यह है कि मृणाल के चरित्र के माध्यम से जैनेंद्र किसी सामाजिक समस्या को प्रस्तुत करते प्रतीत नहीं होते । मृणाल के जीवन की दूसरी अभिलाषाएँ अहेतुक ही चलती दिखाई पड़ती हैं । ऐसा लगता है कि जैनेंद्र ने दर्शन और कल्पना के घोल से ऐसी मृणाल की सृष्टि की है जो जैनेंद्र के पूर्व के उपन्यासों में कहीं उपलब्ध नहीं है जैनेंद्र ने अपनी भावुकता और यातनावादी दर्शन से जिस मृणाल की सृष्टि की है वह अभूतपूर्व है । वह अविश्वसनीय होकर भी पाठकों के चित्त को बरबस अपनी ओर खींचती है । वह कला की धुअन से खिली हुई जुही है । यह कहने में मुझे आपत्ति नहीं है कि 'त्यागपत्र' का उद्देश्य 'मृणाल' है जिसका साथ निभा रहा है उसका भतीजा, प्रमोद । ऐसा भी कहा जा सकता कि जैनेंद्र भारतीय दर्शन के लीलावाद की पुष्टि के लिए प्रयासरत हैं । प्रमोद कहता है :" "घटनाएँ होती है, होकर चली चली जाती हैं । हम जीते हैं, और जीते-जीते एक रोग मर जाते हैं । जीना किस उछाह से आरंभ करते हैं, पर इस जीवन के इस किनारे आते-आते अब कैसी उकताहट जी में भर जाती है । मैं इस लीला, पर इस प्रहेलिका पर सोचता रह जाता हूँ, कुछ पार नहीं मिलता, कुछ भेद नहीं पाता (पृ० 77) जैनेंद्र, लगता है, लीलावाद की परिपुष्टि के लिए यह उपन्यास लिख रहे हैं । गोया, मनुष्य कुछ भी नहीं, सब कुछ नियति है । पुरुषार्थ और संघर्ष मानो जीवन के शब्दकोश में कहीं टंकित ही नहीं हैं ।

मृणाल एकप्रकार से आत्महत्या ही करती है । मृणाल की 'चरमकोटि की स्वतंत्रता उसे आत्महत्या के लिए विवश करती है । सवाल उठता है कि कहीं यही तो नहीं हे 'त्यागपत्र' उपन्यास का उद्देश्य ? यदि उसे ही इस उपन्यास का उद्देश्य मान लिया जाए तो यह कहा जा सकता है कि मृणाल की चरित्र सृष्टि ही अपने-आप में जैनेंद्र का उद्देश्य है, ऐसा चरित्रा जो अविश्वसनीय होकर भी आकर्षक हो, विवेकहीन होकर भी दर्शन की गूढ़ बातें करती हो और असामान्य होकर भी सामान्य आचरण का स्वांग करती हो । मृणाल आत्मग्रस्त है ।

2.3.7. भाषा-शिल्प

जैनेंद्र ने नए रुप और नई भाषा में उपन्यास लिखे । वे कहानी के तार की कड़ियाँ कई जगह तोड़ते चलते हैं ताकि पाठकों को अपनी कल्पनाशक्ति का सहारा लेना पड़े । जैनेंद्र कहते हैं मैंने जगह-जगह कंहानी के तार की कड़ियाँ तौड़ दी हैं । वहाँ शब्दों को थोड़ा कूदना पड़ता है और मैं समझता हूँ पाठक के लिए यह थोड़ा आयास वांछनीय होता है अच्छा ही लगता है ।" इस प्रकार की रचना-प्रक्रिया पाठकों की रुचि की हेतु होती है ।

व्यक्ति मानस के मंथन के कारण जैनेंद्र की कथावस्तु व्यापक नहीं होती । जैनेंद्र के उपन्यासों में घटना-बहुलता नहीं होती, आकस्मिकता नहीं होती, कौतूहल की तीव्र स्थिति नहीं होती, पूरी कहानी सहज ढंग से बिना उतार-चढ़ाव के चलती रहती है । इससे यह अनुभव होता है कि हम उपन्यास पढ़ने के स्थान पर

लेखक के अभिप्रेत जीवन की सहज यात्रा कर रहें हैं । (डॉ० रामदरश मिश्र, हि० उ० एक अंतयात्रा, पृ* 78)

जैनेंद्र चित्रात्मक और प्रतीतात्मक वातावरण का प्रयोग करते हैं । प्रेमचंद की तरह वर्णनात्मकता और सघनता का जैनेंद्रकी के उपन्यासों में अभाव है । उनके उपन्यासों में संवाद छोटे और सटीक होते हैं । वे कथन से ज्यादा व्यंजना पर ध्यान देते हैं । [राजनंदिनी दो-एकबार सामने पड़ी, तो सिंदूरिया हो गई ओर पल के आगे दूसरा पल वहाँ नहीं ठहरी, भाग आई । (पृ० 76)] समाज के विस्तार जनित अनुभवों से वंचित जैनेंद्र मानस-सत्य के उद्घाटन में पुनरावृत्ति की ओर मुड़ते हैं । यही कारण है कि सारे उपन्यास अनुभव-पूँजी के अभाव में प्रत्यावर्तित-से दीखते हैं । 'त्यागपत्र' उपन्यास कथा-साहित्य में संभावना का नया क्षितिज सृष्ट करता है ।'' 'परख' की भाँति 'सुनीता' और 'त्यागपत्र' भी वयस्क और संवदेनशील पाठकों के लिए लिखे गए उपन्यास हैं, विषय और शिल्प दोनों दृष्टियों से । 'त्यागपत्र' में समूची कथा एक पात्र विशेष के अवलोकनबिंदु से प्रस्तुत की गई है, जो निश्चय ही नाटकीकरण की विकास पद्धति है । कारणके अनुरूप उनकी भषा में भी नवीनता है 'सादगी' उनकी भाषा की भी विशेषता है, पर वह प्रेमचंद की भाषा की सादगी से भिन्न है । जैनेंद्र की भाषा स्वगतालाप अथवा खुद से या बहुत हुआ तो किसी आत्मीय के चुप-चुप की जानेवाली बातचीत की भाषा है । इसलिए भाषा सरल होने पर भी आंतरिक मनोभावों को व्यक्त करने की उसमें अद्भुत क्षमता है । इसमें संदेह नहीं कि हिंदी उपन्यास को जैनेंद्र की देन महत्वपूर्ण है, प्रेमचंद के बाद उन्होंने ने ही हिंदी उपन्यास को विशेष व्यक्तित्व प्रदान किया । (हि० सा० का इतिहास, सं० डॉ० नगेंद्र, पृ0 5 63)

2.3.7. भाषा

कबीर ने जिस तरह 'दरेरा देकर भाषा को भावानुवर्तिनी बनया था उसी तरह जैनेंद्र ने भी भाषिक संरचना में कुछ इधर उधर का (भाषा में) नए आलोकवृत्त का निर्माण किया । आत्मीय संवाद की स्थिति में उन्होंने 'भाषा के मानक को तोड़कर उसमें क्षेत्रीय भाषा की ही गूँजभरकर जिस माधुर्य की दृष्टि की, वह अपूर्व है । प्रमोद, तेरी बुआ तो मर गई । तू उसे अब कभी याद मत करियो । कैसा राजा भैया है हमारा ।'' (पृ 015) इस संवाद (मृणाल का) में करियों (ब्रजभाषा की क्रिया) खड़ी बोली में मधुमासी मिठास घोल देता है ।

जैनेंद्र भी भाषा पर आत्मीयता, और वैचारिकता का दबाव अच्छी तरह देखा जा सकता है । आत्मीयता के दबाव में उनकी भाषा आर्द्र हो गई है और वैचारिकता के दबाव में कुछ-कुछ रूक्ष ।

प्रमोद सच्ची-सच्ची कहूँ तो मैं ही परायी हो गई हूँ ।''(पृ 17) ''किसी ओर मार्ग सूझता नहीं है, और मानव अपनी क्षुधा तृष्णा, मान-मोह में भटकता फिरता है । यहाँ जाता है, वहाँ जाता है । पर असल में वह कहीं भी नहीं जाता । एक ही जगह पर अपने ही जुए में बँधा कोल्हू के बैल की तरह चक्कर मारता रखता है ।'' (पृ० 42)

प्रथम उदाहरण में सच्ची-सच्ची' भाषा में आत्मीयता घोलती है । दूसरे उदाहरण में आत्मीयता न होकर एक दृष्टि है जो बौद्धिक स्तर पर प्रहान करती है । एक ही जगह' से काम चल सकता था, पर उपन्यासकार ने उसके साथ 'पर' कारदीया चिह्न का प्रयोगकर कश्य को विषिष्ट बनाया है । यह है भाषा पर अधिकार ।

जैनेंद्र ने कहीं-कहीं शब्द निर्माण में व्यावहारिक प्रचलन को तोड़कर मनमनानी की है । जैसे 'नासमझ' के

लिए 'अनसमझ' का प्रयोग ''इतना अनसमझ क्यों है प्रमोद । तू नहीं जानता कि मेरी शादी हो गई है ।''(पृ० 20)

जैनेंद्र की भाषा व्यंजनापूर्ण एवं कठोर व्यंग्य को सहज भाव से वहन करनेवाली है । मृणाल पूछती है, ''प्रमोद, तू जानता है कि पति का घर क्या होता है ?'' मैंने कहा कि मैं नहीं जानता । 'स्वर्ग' होता है । (मृणाल का कथन, पृ० 30) 'स्वर्ग शब्द व्यंजनापूर्ण होने के साथ सामाजिक जड़ता पर (विवाह-संस्था की जड़ता पर) कठोर व्यंग्य है ।

जैनेंद्र ने अपने उपन्यासों के लिए सामाजिक क्षेत्रों में विचरण करने की अपेक्षा व्यक्तिमानस की गुप्त गुफाओं में विचरण करना श्रेयस्कर समझा है । यही कारण है कि उन्की भाषा कई जगह उनकी जानबूझकर की गई छेड़छाड़ से नव्यरूपा हो गई है । मन की प्रत्येक नाटकीय हलचल को जैनेंद्र अपनी भाषा में उतारने में सफल हैं ।'' बुआ ! उह, वह जाएँ तो जाएँ, मेरा उनसे कोई मतलब नहीं । मेरा किसी से कुछ मतलब नहीं है । मैं अकेला सब-कुछ से निबट लूँगा । हाँ, अकेला, अकेला । मुझसे मत बोलो, कोई मत बोलो मैं नहीं याद करूँगा बुआ को । मेरे रहते बुआ चली जा रही हैं ? और वह फूफा कौन बला हैं कि लें जाएँगे ? ले जाएँ । जाएँ, अरे टलें तो ।'' (प्रमोद का कथन पृ० 38) भाषा का नाटकीकरण यही है । यही है भाषा का अभिनयमय स्वरूप ।

अपनी सादगी में भी जैनेंद्र की भाषा कितनी समर्थ है, यह इस उपन्यास में सर्वत्र देखा जा सकता है । ''मैंने देखा कि बुबा के हाथ बेलन पर शिथिल निष्क्रिय पड़ गए हैं और तवे की रोटी फूलकर अब जलने की चेतावनी दे रही है ।'' (पृ० 48) गार्हस्थिक परिवेश का यह वाक्य बुआ की मानसिक स्थिति को उद्घाटित करने में पूर्णत: समर्थ है । 'शिथिल को उद्घाटित करने में पूर्णत: समर्थ है । 'शिथिल निष्क्रिय' और जलने की चेतावनी' से निकलनेवाला अर्थ अभिधास्तर से आगे का अर्थ देता है जो लक्षण-व्यंजना की सीमा से आगे संकेतात्मक अर्थ का वाचक है । रोटी का चेतावनी देना मृणाल के लिए भी चेतावनी है जिसे मृणाल जानती है, पर उसका वह अनुसरण नहीं करती ।

जिस अँधेरी गली में मृणाल रहती है, उसका वर्णन करते समय जैनेंद्र एक वाव्य लिखते हैं, ''यहाँ असमान भी एक गली बन जाता है और काल की गिनती रातों के हिसाब से होती है । (पृ० 51) यह अकेला वाव्य गली के भयावह अंधकार को व्यक्त करने में समर्थ है, और ऐसा वाव्य जैनेंद्र ही लिख सकते हैं ।

कहीं-कहीं तत्सम शब्द को अर्द्धतत्सम में परिवर्तित कर जैनेंद्र ने अपने वाव्य को नवीन आवेग दिया है । तत्सम से तद्भवीकरण की इस प्रक्रिया से भाषा की ऊर्जा में वृद्धि हुई है । ''वह जान गया है कि मैं उसकी सरवस नहीं हूँ । मैं बस एक बदजात बदकार बाजारू औरत हूँ । (पृ० 60-61) 'सर्वस्व' तत्सम से 'सरवस' किया गया है जो मृणाल के अभिजात वर्ग से निम्न वर्ग आने की भी सूचना देता है । 'समुद्र' को समन्दर बनाने का औचित्य समझ में नहीं आया । (पृ० 79)

जैनेंद्र ने चारों स्रोतों से शब्द लिए हैं और भाषा को व्यापकता प्रदान की है । निरायास अलंकरणों ने भाषा को समृद्ध किया है । कहीं-कहीं अँगरेजी पदबंधों का अनुवाद भी किया गया है, जैसे तब उस बर्फीली

चट्टान-सी जमी हुई चुप्पी को तोड़कर बुआ ने कहा ..." (पृ0 61) जैनेंद्र ने भाषा-संरचना में छोटे-छोटे वाक्यों को महत्व दिया है । छोटे-छोटे वाक्य संगतिपूर्ण लय में एकत्र होते जाते हैं और पूरा-का-पूरा अनुच्छेद तैयार हो जाता है । मिश्र वाक्य भी विराम के साथ छोटे-छोटे वाक्यों पर ठहरते चलते हैं, अर्थ स्पष्ट होता चलता है । किसी-किसी शब्द को अंतिम स्वर के आधार पर वितनित कर जैनेंद्र भाव की सघनता को व्यक्त करने का नया रास्ता निकालते हैं । जैसे-मन में एक गाँठ-सी पड़ती जाती थी । वह न खुलती थी, न घुलती थी । बल्कि कुछ करो, वह और उलझती और कसी ही जाती थी । **"एक ही जगह पर अपने ही जुए में बँधा कोल्हू के बैल की तरह चक्कर मारता रहा" पृ०४२)-में 'पर' कारकीय विभक्ति की आवश्यकता नहीं दीखती, पर जैनेंद्र ने इसका प्रयोगकर वाव्य को और व्यंजनात्मक बनाया है । चक्कर मारने के प्रयोग के चलते 'पर' का प्रयोग आवश्यक ही नहीं अनिवार्य हो जाता है ।** जो होता था, कुछ होना चाहिए था, कुछ करना चाहिए, कहीं कुछ गड़बड़ है । कहीं क्यों सब गड़बड़-ही-गड़बड़ है । सृष्टि गलत है । समाज गलत है, जीवन ही हमारा गलत है । सारा चक्कर यह ऊटपुटांग है । इसमें तर्क नहीं है, संगति नहीं है, कुछ नहीं है । इससे जरूर कुछ होना होगा, कुछ करना होगा पर क्या आ ? वह क्या है, जो भवितव्य है और जो कर्तव्य है । (पृ० 68)

जैनेंद्र बिंवविधायिनी सांकेतिक और प्रतीकात्मक भाषा का प्रयोग करते हैं । दर्शन और वैचारिकता को प्रस्तुत करने के समय भी जैनेंद्र सुगम भाषिक रचना का प्रयोग करते हैं । यह उनकी भाषिक क्षमता और कौशल का प्रमाण है । वाक्यों में शब्द-योजना वे अपने मुताबिक करते हैं । अर्थात्, वे विशेष अर्थ का किसी तथ्य पर जोर देने के लिए शब्दयोजना की परंपरा में छेड़-छाड़ करते हैं । यथा-'दम वहाँ फूल आता है ।" (पृ० 79) [''वहाँ दम फूल आता है' की जगह] मैं तुम्हें बहुत प्रेम करती हूँ । करती हूँ इसी से अपने पास नहीं बुला सकती । पृ० 79) क्रिया से वाक्य शुरू करना और पूरक विहीनता में पूर्व के आधार पर अर्थ को विशद बनाना जैनेंद्र की भाषा का कौशल है ।

'नरककुंड को नर्ककुंड (पृ० 95) लिखना शोभनीय नहीं है । 'अनुग्रहीत (पृ० 76) के स्थान पर 'अनुगृहीत' लिखना चाहिए था । नासमझ के लिए 'अनसमझ धित्य प्रयोग है । उसके लिए पहले उसे पति के प्रति सच्ची होना चाहिए ।" (पृ० 56) के स्थान पर 'उसके लिए पहले उसे पति के प्रति सच्चा होना चाहिए' वाक्य को प्रयोग होना चाहिए पा । सहेली के तर्ज पर बहनेली शब्द का निर्माण बड़ा सार्थ्क है ।

2.4 सारांश

पिछले पृष्ठों में उपन्यास के विभिन्न तत्त्वों के आधार पर 'त्यागपत्र' की विस्तृत और विशद समीक्षा प्रस्तुत की गई है ।

2.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. 'कथावस्तु' के आधार पर 'त्यागपत्र' की विवेचनां करें ।

2. 'चरित्र-चित्रण के आधार पर 'त्यागपत्र' की समीक्षा करें ।

3. 'त्यागपत्र' के वातावरण पर प्रकाश डालें ।

4. 'त्यागपत्र' के उद्देश्य पर अपना विचार रखें ।

5. 'त्यागपत्र' के भाषा-शिल्प पर टिप्पणी लिखें ।

6. 'संवाद-योजना' के आधार पर 'त्यागपत्र' की सफलता या विफलता पर अपना विचार रखें ।

2.6 वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. सही उत्तर का संकेताक्षार लिखें

'त्यागपत्र' की नायिका कौन हैं ?

(क) राशी (ख) अनुपमा

(ग) मृणाल (घ) मृणनयनी

2. प्रमोद मृणाल का कौन है ?

(क) भाई (ख) भतीजा

(ग) देवर (घ) मित्र

3. 'सुनीता' किसकी रचना है ?

(क) प्रेमचंद (ख) अज्ञेय

(ग) जयशंकर प्रसाद (घ) जैनेंद्र

उत्तर 1. (ग) 2. (ख) 3. (घ) 4. (क)

2.7. संदर्भ ग्रंथ

1. हिंदी साहित्य का इतिहास सं० डॉ० नगेंद्र

2. हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, डॉ बच्चन सिंह

3. हिंदी उपन्यास एक अंतर्यात्रा, डॉ० रामपरश मिश्र

4. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामभद्र शुक्ल

प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण

3.1 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ का उद्देश्य है 'त्यागपत्र' उपन्यास के प्रमुख पात्रों से छात्रों को परिचित कराना । इस पाठ में मुख्य रूप से मृणाल और प्रमोद की चरित्रगत विशेषताओं का सम्यक् आकलन किया जाएगा । इन चरित्रों के अतिरिक्त मृणाल के भैया-भाभी, मृणाल के पति और कोयलेवाले व्यापारी के चरित्र पर भी प्रकाश डाला जाएगा ।

3.2. प्रस्तावना

चरित्र-चित्रण उपन्यास का अत्यंत महत्वपूर्ण अंग है । उपन्यास के पात्रों के क्रियाकलाप से ही कथावस्तु का निर्माण होता है । अत: पात्र जितने ही अधिक सजीव और यथार्थ होंगे, कथानक में भी उतना ही आकर्षण लाया जा सकेगा । (हिं० सा० कोश, भाग 1 पृ० 124) पात्रों में ही रचनाकार अपना मंतव्य डालता है और उनके माध्यम से ही वह अपनी कृति के उद्देश्य को पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करता है ।

पात्र दो प्रकार के होते हैं : एक पात्र वह होता है जो किसी रचना में शुरू से अंत तक एक भाव से आचरण करता है, उसके स्वभाव में कोई परिवर्तन नहीं आता । दूसरा पात्र वह होता है जिसमें आगे चलकर परिवर्तन आता है और उसकी जीवन-दशा गुणात्मक रूप से परिवर्तित हो जाती है । वह असद् से सद की ओर उन्मुख होता है । उसके जीवन में स्पृहणीय उत्कर्ष आता है । ऐसे पात्र के माध्यम से रचनाकार एक आदर्श की स्थापना करता है जिससे समाज को एक स्वस्थ दिशा प्राप्त होती है । असद् से सद् की ओर गतिशील पात्र को 'गतिशील' पात्र कहते हैं । सदा एक भाव से रहने वाले पात्र को तटस्थ पात्र कहते हैं । यह सामान्य पात्र होता है । ऐसे पात्र में रचनाकार वर्ग विशेष के सामान्य अभिलक्षणों को प्रस्तुत करता है । इस प्रकार के पात्र को वर्ग विशेष का प्रतिनिधि पात्र कहा जाता है । ऐसा पात्र 'टाइप' होता है ।

कथा के प्रमुख पात्र को 'चरित्र' कहा जाता है । जिस प्रमुख पात्र के चारों ओर और पात्र अभिमुख होते हैं उसे कथानायक कहा जाता है । कथानायक कथा के केंद्र में होता है । कथा की सारी घटनाएँ किसी-किसी रूप में कथा-नायक से जुड़ी होती हैं या कथा-नायक की प्रेरणा से घटित होती हैं । यही स्थिति कथा-नयिका की भी होती है । 'नायक' या 'नेता' शब्द की व्युत्पति 'नी' धातु से माना गया है, जिसका अर्थ होता है-'लेजाना' । अर्थात् नायक ही कथा को उद्देश्योन्मुख करता है, नायक के माध्यम से ही रचनाकार अपना विशेष दृष्टिकोण उपस्थित करता है । नायक कथा का मुख्याधार है । संपूर्ण कथा की गतिशीलता उसके चरित्र एवं कथा-व्यवहार की गतिशीलता पर निर्भर करती है । इसीलिए कथा चाहे वह काव्य की शैली में हो, या नाट्य शैली में, उसके लिए नायक की अनिवार्यता अपेक्षित है ।" (हि० साहित्यकोश, भाग न, पृ० 332)

कई दृष्टियों से 'नायक' का वर्गीकरण किया गया है । प्रथम वर्गीकरण के अनुसार 'नायक दो प्रकार के होते हैं आदर्शवादी नायक और यर्थावादी या प्रकृत नायक । प्रेमचंद, रवींद्रनाथ, टॉलसहाय आदि कथाकारों ने प्राय: आदर्शवादी नायकों की सृष्टि ही है । प्रेमचंद 'गोदान' में यथार्थवादी नायक की दृष्टि करते हैं । आज के कथा-साहित्य में यथार्थवादी और प्रकृत नायकों का प्रभुता बढ़ी है। इसका मुख्य कारण है हमारी दृष्टि में बदलाव । बौद्धिक चेतना के प्रमुख के कारण आधुनिक कथा-साहित्य में यथार्थवादी नायकों की प्रभुता बढ़ी है ।

नायकों का दूसरा वर्गीकरण चरित्र ही गतिशीलता के आधार पर होता है । इस आधार पर 'नायक' दो प्रकार के होते हैं- स्थिर नायक ओर गतिशील नायक । 'स्थिर नायाक' को 'तटस्थ नायक' की भी संज्ञा दी जाती है । राबर्ट लिडिल ने एक तीसरे प्रकार के 'नायक' की भी कल्पना की है- आदर्शोन्मुख यथार्थवादी नायक ।

विभिन्न सामाजिक स्थितियों तथा काम-सिद्धांत के आधार नायकों की परिकल्पना की जा सकती है । यह कथाकार के हाथ में है कि वह किस प्रकार के नायक से अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है ।

3.3 विस्तार

3.3.1 मृणाल का चरित्र-चित्रण

मृणाल का जन्म अभिजात कुल में हुआ था । बचपन में ही माँ-पिता के स्वर्गवासी होने के बाद वह बड़े भैया के अभिभावकत्व में पली । भैया से मृणाल को असीम प्यार मिला । पर, भैया का अशेष प्यार कहीं उसे (मृणाल को) बिगाड़ न दे, भाभी उसका खास ख्याल रखती थी । मृणाल के व्यक्तित्व में पारिवारिक सुख-स्नेह का पूरा योगदान था । उसका भतीजा प्रमोद उसे बहुत चाहता था और मृणाल भी उसे बहुत प्यार करती थी । मृणाल के चरित्र में प्यार का असीम सागर उमड़ रहा था । यही प्यार समाज के निम्नवर्ग के लिए करुणा के रूप में परिवर्तित होता दीखता है । मृणाल के चरित्र में बस प्यार नहीं है तो सिर्फ अपने लिए । यदि अपने लिए भी प्यार होता, तो शायद वह अविवेकपूर्ण निर्णय लेकर अपनी जिन्दगी को क्षत-विक्षत नहीं करती ।

मृणाल सुंदरता की अपूर्व प्रतिमूर्ति है । बुआ का तब का रूप सोचता हूँ, तो दंग रह जाता हूँ । ऐसा रूप कब किसको विधाता देता है । जब देता है, तब कदाचित् उसकी कीमत भी वसूल कर लेने की मन-ही-मन नीयत उसकी रहती है । पिताजी तो बुआ कसी मोहिनी मूरत पर रीझ-रीझ जाते थे ।" (प्रमोद का कथन पृ०08)

मृणाल जिससे प्रेम करती है उसे अपना संपूर्ण विश्वास देती है, उसके लिए वह कष्ट झेलने के लिए तैयार रहती है । स्कूल में अपनी सहेली शीला का अपराध अपने माथे पर लेकर वह मास्टर साहब के द्वारा पिटती है । "मैंने खड़े होकर कहा-यह मेरा कसूर है, मास्टर जी । मास्टरजी पहले तो मुझको देखते-के-देखते रहे । फिर कहा यहाँ आओ । मैं चली गई । कहा-हाथ फैलाओ- मैंने हाथ फैला दिया । उस फैली हथेली पर उन्होंने तीन चार बेंत मारे । मैंने समझा था कि और मारेंगे । पर अब बेंत उन्होंने अपने हाथ से अलग कर दिया तो मैंने अपना हाथ खींच लिया । सच कहूँ, प्रमोद, मुझे कुछ भी चोट नही लगी ।" (पृ०09)

मृणाल के चरित्र के दो भाग हैं- भैया के अभिभावकत्व में पला बचपन और शादी के बाद बीहड़ जीवनयात्रा । बचपन में मृणाल हँसमुख और निर्द्वन्द्व है, सारी चिंताओं से मुक्त, स्वछंद और स्वपनों की मृगमरीचिका से अपरिचित । पर , किशोरावस्था में एक दिन मदन ने दुंदुभि बजाई और वह अपना हृदय शीला के भाई को दे बैठी । यहीं से उसके जीवन में एक तीव्र मोड़ आता है जो उसके जीवन की सारी सरल मिठास को सोख लेता है और उसे जगत् के महासमुद्र में अकेला छोड़कर उसकी कठोर परीक्षा लेने लगता है । ''उन्हें (मृणाल को) अब एकांत उतना बुरा नहीं लगता । वे शाम के वक्त छत पर खटोला डाले ऊपर उड़ती हुई चीलों को चुपचाप देख रही है । कभी पतंग के पेंच देखती हैं, और कटी हुई पतंग पर जब तक ओझल न हो जाए, आँखें गाड़े रहती है । और नहीं तो खटोले पर पेट के बल लेटकर कोयले से धरती पर कीरम काँटे ही खींचती है ।'' (प्रमोद का कथन, पृ० 77) प्रेम करने के बाद मृणाल का जीवन लगातार उलझता जाता है, क्योंकि प्रेम गोपनीय धन है, पर उसे जितना ही गोपनीय रखा जाता है, मन उसे सहेजने में उतना ही बेदम और बेचैन रहता है । प्रेम करने के बाद मृणाल का जीवन लगातार उलझता जाता है, क्योंकि प्रेम दो आत्माओं का पारस्परिक अमंत्रण ही नहीं होता, उसमें सामज भी अनाहूत अमंत्रित रहता है । कोई प्रेमी समाज की उपेक्षा नहीं कर सकता । समाज की व्यवस्था प्रमियों के हृदय में गाँठे तैयार करती है, प्रेमियों की सारी स्वछंदता सामाजिक व्यवस्था पर न्योछावर हो जाती है । मृणाल के साथ भी ऐसा ही होता है । समाज को एक अंग के रूप में भाभी से उसे प्रताड़ना मिलती है और भाई की चिंता मृणाल के भीतर एक गाँठ तैयार कर देती है ।

प्रेम करने के बाद मृणाल नए-नए स्वप्न देखती है नई-नई कल्पनाएँ करती है । वह स्वछंदता वह स्वच्छंता चाहती है । वह चिड़िया होना चाहती है । उसका प्रेम सामाजिक मर्यादा और कुल प्रतिष्ठा के लिए खतरा बन जाता है और वह निर्ममता के साथ पिटी जाती है । भाभी पीटती है । मृणाल उस दिन से उदास रहने लगती है । अँधेरे में जैसे कोई कुछ टटोल रहा हो, और वह उसे मिल नहीं रहा हो, ऐसी ही स्थिति हो जाती है मृणाल की । उसके सपने चूर-चूर हो जाते हैं । जीवन का अर्थ उसके हाथों से मानो फिसल जाता है और वह उसे देखती हुई भी कुछ करने में असमर्थ है ।

पिटाई के पाँच छः महीने के बाद जल्दी-जल्दी तरपरता के साथ उसकी शादी एक प्रौढ़ पुरुष से कर दी जाती है । मृणाल उसी दिन से नई मृणाल हो जाती है । निरूद्देश्यता और निराशा के अँधेरे में खोई हुई मृणाल पीड़ा को उत्सव बना अपने जीवन को सार्थक करने का प्रयास करती है ।

शादी के बाद मृणाल अपनी को पराई समझने लगती है । उसके साथ परिवार ने पराया-सा व्यवहार किया है । 'परिवार' मृणाल को अपना समझता तो वह उसकी पीड़ा, उसकी इच्छा और उसके सपनों के बारे में अवश्य सोचता । पर, वह तो सामाजिक मूल्यों के भार के तले इतना दबा पड़ा है कि वह किसी के स्वतंत्र अस्तित्व को स्वीकार ही नहीं कर सकता । वह प्रेम के औदात्य को समझ ही नहीं सकता । मृणाल प्रमोद से कहती है प्रमोद सच्ची-सच्ची कहूँ तो मैं ही परायी हो गई हूँ । तुम सब लोगों के लिए मैं परायी हूँ । तेरी माँ ने मुझे धक्का देकर पराया बना दिया है । पर मुझे जहाँ भेज दिया है, प्रमोद मेरा मन वहाँ का नहीं है ।'' (पृ० 17) मृणाल दिल की आग में जल रही है ।

मृणाल ससुराल जाना नहीं चाहती । वह कुछ चाहती है, पर कोई पूछनेवाली नहीं है कि वह क्या चाहती

है । ''ज्यों-ज्यों जाने का दिन आता उनकी निगाह कुछ बँधती सी जाती थीं । जहाँ देखतीं, देखती रह जाती थीं । जैसे सामने उन्हें ओर कुछ नहीं देखती रह जाती थी । जैसे सामने उन्हें और कुछ नहीं दीखता । सब भाग्य दीखता है और वह भाग्य चीन्हा नहीं जाता । ऐसी अपेक्षित पूछती हुई-सी निगाह से देखतीं मानो प्रश्न रोककर भी उत्तर माँगती हों कि मैं चाहती हूँ पर अरे कोई बताएगा कि क्या ? (पृ० 21)

मृणाल अब भाग्य से समझौता करती है । पर, उसका भाग्य क्या है, उसे क्या पता । मृणाल का संपूर्ण अस्तित्व प्रेम की महत्ता के स्वीकार और प्रेमी के जीवन में न आने देने की जिद में इस तरह कुंठाग्रस्त हो जाता है कि वह (मृणाल) अपना सर्वनाश करने पर ही उतारू हो जाती है । मृणाल का प्रेमी यदि भूल से भी अपने प्रेम का इजहार करने उसके राक्षस परिवार की ओर उन्मुख होगा तो वह (मृणाल) छत से गिरकर आत्महत्या कर लेगी । मृणाल का यह विवेकहीन संकल्प उसके प्रेम का मखौल बन जाता है यह और उसकी जिंदगी अंधी गलियों मे भटक जाती है । चुपचाप भाग्य के सहारे अपने को छोड़ देना मृणाल को एक कमजोर लड़की के रूप में प्रस्तुत करता है । मृणाल मनोरोगी बन जाती है । प्रेम में समाज से जितनी यातना मिलती है, उससे कई गुनी ज्यादा यातना मृणाल अपने लिए स्वयं सृष्ट करती है ।

ससुराल में मृणाल का मन नहीं लगता । कहाँ प्रेम की सुवासित वीथि में उन्मुक्त विचरण और कहाँ प्रौढ़ काया का लिजलिजा आसंग । उस पर भी बात-बात में झिड़की और शंकालु आँखों की टोही प्रवृत्ति । मृणाल घुटती-सी महसूस करती है वहाँ । निरपराध होने पर भी प्रौढ़ पतिदेव से उसे अपमानित, तिरस्कृत और प्रताड़ित होना पड़ता है, बेंत का स्वाद चखना पड़ता है । मायके में मृणाल बेंत से पीटी जाती है, क्योंकि उसके हर आचरण में प्रेमी की प्रेरणा ढूँढ़ी जाती है । बेंत से पीटी जाकर और गर्भवती होकर मृणाल मायके में शरण लेना चाहती है पर सामाजिक मर्यादा का डर परिवार को शरण देने से रोकता है । मृणाल अपने भैया से कहती है कुछ भी बात नहीं है, बाबूजी पर मैं जाना नहीं चाहती हूँ ।'' (पृ० 29) भैया कहते हैं जाना नही चाहती हो, यह तो मैं दखता हूँ । पर भला ऐसा नहीं होता है । और कब तक नहीं जाओगी ? (पृ० 21) ''बिलकुल नहीं जाऊँगी ।'' मृणाल कहती है । भैया झींककर कहते हैं ''तो क्या करोगी ?'' (पृ० 29) मृणाल को अपनी असहायवस्था का भान होने लगता है । वह अपने भैया से कहती है ''आप यहाँ से निकाल देंगे तो यहाँ से भी निकल जाऊँगी । ....पिताजी मुझे नन्हीं छोड़ जहाँ चले गए हैं कोई राह बता दे तो मैं वहीं जाना चाहती हूँ । (पृ० 29) मृणाल यहाँ दो पाटों में पिसती भारतीय दु:खिनी नारी के रूप में चित्रित हुई है । उसके दु:ख का अंदाजा उसी से लगाया जा सकता है कि उसे न तो मायके में शरण मिलती है और न ससुराल में । वह मायके की होकर भी मायके की नहीं होती और ससुराल की होकर भी कभी ससुराल की नहीं होती । प्रमोद का प्रेम उसे मायके से बाँध रखने बाला सक्षम तंतु है । प्रमोद के चलते ही मृणाल भद्र समाज को तिरस्कृत नहीं करती । मृणाल कहती है, ''कभी-कभी वह तिरस्कार मेरे मन में जोरों से उठता है लेकिन तुम्हारे प्रेम का स्मरण कर मैं भीगी हो आती हूँ । और मन का कड़वा स्वाद मेरे स्वास्थ्य को नष्ट नही कर पाता । कटुता आती है और तुम्हारी स्मृति के स्पर्श से मैं उसी को अपना पोषक बल बना रहती हूँ । तुम्हारा प्रेम मुझे स्वस्थ रखता है, पर डर है कि तुम यहाँ आओ और कहीं बचा-खुचा तुम्हारा प्रेम भी मेरे हाथों से जाता रहे ।'' (पृ० 82) मृणाल मानो प्रेम में जीना चाह कर भी प्रेम से अलग होने में अपने नवीन अस्तित्व की स्थापना के जद्दोजहद में है ।